मासिक विज्ञान पत्रिका

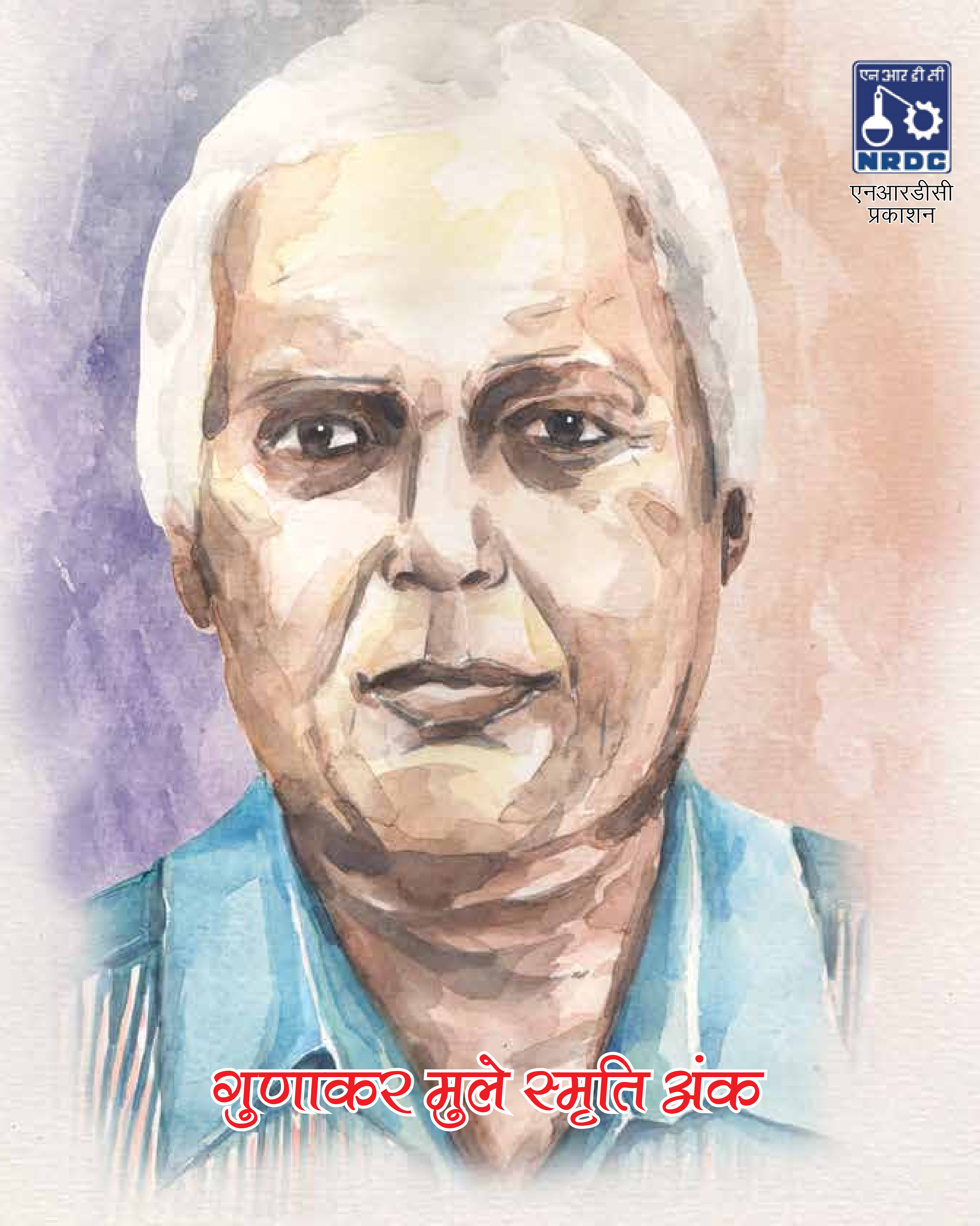
₹50

अक्तूबर 2018

आविष्कार

NRDC

एनआरडीसी
प्रकाशन



गुणाकर मूले स्मृति अंक

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन

(वै.औ.अनु.वि., विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार का उद्यम)

20-22, जमरूदपुर सामुदायिक केन्द्र, कैलाश कालोनी विस्तार, नई दिल्ली-110048

दूरभाष: 011-29240401-07 फैक्स: 011-29240409-10

वेबसाईट: www.nrdcindia.com इमेल: awards@nrdc.in

सत्यमेव जयते

एन आर डी सी NRDC

एनआरडीसी राष्ट्रीय सराहनीय आविष्कार पुरस्कार-2018

एनआरडीसी द्वारा विभिन्न अनुसंधान व विकास संस्थानों/विश्वविद्यालयों से उत्पन्न प्रौद्योगिकियों के विकास, प्रोत्साहन और अंतरण का कार्य किया जाता है। एनआरडीसी ने अब तक भारत व विदेशों में विभिन्न उद्यमियों, स्टार्ट-अप और लघु व मध्यम उद्यमियों के साथ प्रौद्योगिकियों/नवाचारों/बौद्धिक संपदा के अंतरण हेतु लगभग 5000 करारों पर हस्ताक्षर किए हैं। देश में आविष्कारशीलता की भावना को प्रेरित करने हेतु व्यक्तिगत आविष्कारकों को उनके सराहनीय आविष्कारों के लिए पुरस्कृत करते हुए और उन्हें सहयोग व प्रोत्साहन प्रदान करते हुए एनआरडीसी द्वारा वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान विभाग, विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली के सहयोग से अपने निर्धारित उद्देश्यों/क्रियाकलापों को जारी रखते हुए प्रत्येक वर्ष कर मुक्त पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं।

भारतीय नागरिकों में नवाचारी वैज्ञानिक प्रयासों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से निम्नलिखित तीन श्रेणियों में वर्ष 2018 के एनआरडीसी राष्ट्रीय सराहनीय आविष्कार पुरस्कार (वर्ष 1973 से आरंभ) हेतु आवेदन आमंत्रित हैं:

- **राष्ट्रीय नवाचार पुरस्कार–** नवाचार या तो नवीन प्रविधि/उत्पाद हो अथवा विद्यमान प्रविधि/प्रौद्योगिकी का नवीन अनुप्रयोग या उत्पाद होने के साथ उपयोगी हो, निष्पादन को बेहतर करने के अतिरिक्त आर्थिक, पर्यावरणीय, प्रौद्योगिक व्यवहार्यता और औद्योगिक अनुप्रयोज्ता प्रदान करने वाला पर्याप्त रूप से विकसित व उसका पेटेंट प्रकाशित हो। **(पुरस्कारों की अधिकतम संख्या: 2, राशि: 5 लाख रुपए, प्रत्येक)**
- **राष्ट्रीय समाजीय नवाचार पुरस्कार–** नवाचार या तो एक नवीन उत्पाद, प्रविधि हो या उसका कोई उन्नत रूप हो जिससे उसके लाभों और कार्यों को बेहतर बनाकर उसकी उपयोगिता में वृद्धि की गई हो। साथ ही समाज पर परिलक्षित प्रभाव सहित सफलतापूर्वक इसे व्यवहार में परिवर्तित किया गया हो। **(पुरस्कारों की अधिकतम संख्या: 3, राशि: 3 लाख रुपए, प्रत्येक)**
- **राष्ट्रीय उदीयमान नवाचारी पुरस्कार–** (पूर्व स्नातक व स्नात्कोत्तर विद्यार्थियों के लिए) – नवाचार या तो मौलिक हो या वर्तमान उत्पाद/प्रविधि का एक उन्नत रूप होना चाहिए जिससे उसके उपयोग और कार्य संपादन को बेहतर बनाकर उसकी उपयोगिता में वृद्धि की गई हो। **(पुरस्कारों की अधिकतम संख्या: 5, राशि: 1 लाख रुपए, प्रत्येक)**
- अन्य जानकारी व ऑनलाइन आवेदन करने हेतु हमारी वेबसाइट **www.nrdcindia.com** का अवलोकन करें। **आवेदन प्राप्ति की अंतिम तारीख: 15 अक्तूबर, 2018**

आविष्कार

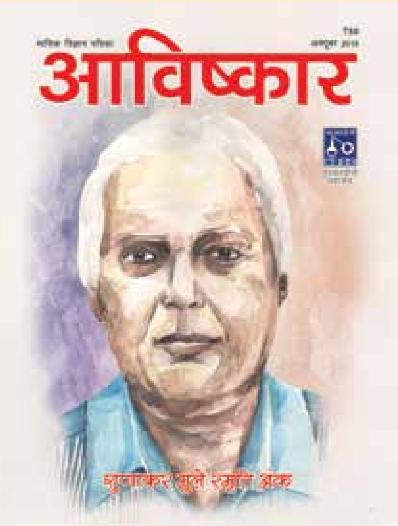
अक्तूबर 2018, वर्ष 48, अंक 10 | इस अंक में | ISSN 0970-6607

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन
[वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान विभाग, विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार का उद्यम]

20-22, जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र
कैलाश कॉलोनी एक्सटेंशन
नई दिल्ली-110048

फोन : 29240401-07
फैक्स : 091-11-29240409, 29240410
ई-मेल : write2@nrdc.in
वेबसाइट : http:/www.nrdcindia.com
CIN : U74899 DL 1987 GOI 002354

गुणाकर मुले स्मृति अंक



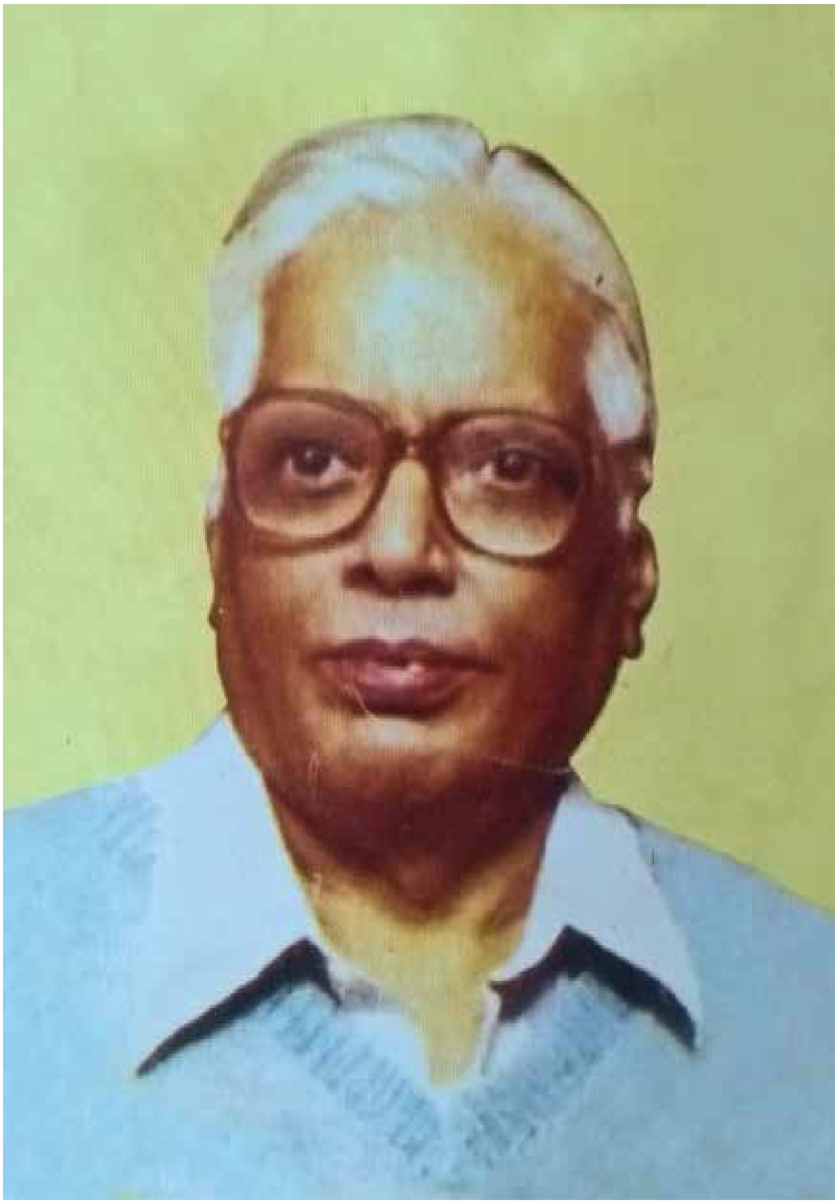
आवरण : पारुल सिन्हा

आविष्कार का सदस्यता शुल्कः एक प्रतिः ₹50; वार्षिक : ₹550; द्विवार्षिकः ₹1,100; त्रिवार्षिकः ₹1,650

विषय का विराट दर्शन कराने वाले लेखक थे

गुणाकर मुले

— राधाकान्त अंथवाल



गुणाकर मुले जी के आमुख लेख के साथ मैंने 'आविष्कार' पत्रिका के संपादन की यात्रा शुरू की थी। वे विज्ञान लेखन के शिखर पर थे और मैं संपादन की तराई में। उन्होंने मेरा आग्रह स्वीकार करते हुए मेरे 'पहले' अंक के लिए लेख भेजा। मैं ऐसा भाग्यशाली यात्री हूं जिसे यात्रा के प्रारंभ में ही एक ऐसा ज्योतीय स्रोत प्राप्त हो गया जो अनवरत प्रकाश देता रहा है— और आज भी, उनकी जीवन यात्रा की समाप्ति के नौ साल बाद भी देदीप्यमान है।

बात 29 सितम्बर 1997 की है। उस दिन भारत के ध्रुवीय उपग्रह प्रमोचन यान— पी.एस.एल.वी.-सी1 का श्रीहरिकोटा के अंतरिक्ष केंद्र से पहला परिचालनात्मक (ऑपरेशनल) प्रमोचन सफलतापूर्वक संपन्न हुआ। इस उड़ान में पी.एस.एल.वी.-सी1 ने देश में बने सुदूर संवेदन उपग्रह आई.आर.एस.-1 डी को अंतरिक्ष में ध्रुवीय कक्षा में पहुंचाया था। भारत के लिए यह महान उपलब्धि थी। अपने 'पहले' अंक के आमुख लेख के लिए मुझे एक अच्छा विषय मिल गया था। मैंने मुले जी को टेलीफोन करके पूछा कि क्या वे इस विषय पर एक लेख दो-तीन दिन में उपलब्ध करा सकते हैं ताकि इसे नवम्बर 1997 अंक में प्रकाशित किया जा सके। उन्होंने कहा, "अवश्य"। और निर्धारित सीमा के भीतर उन्होंने वह लेख उपलब्ध कराया। लेख का शीर्षक था 'अंतरिक्ष अनुसंधान के क्षेत्र में भारत की महान उपलब्धि'।

मुले जी ने उस लेख को शुरू किया था 21 नवम्बर 1963 से, जिस दिन भारत ने थुम्बा से नाइक अपाचे नामक रॉकेट छोड़ कर अंतरिक्ष कार्यक्रम की शुरुआत की थी। लगभग सात पृष्ठ के उस लेख में भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम की यात्रा का पूरा वृत्तांत और भावी कार्यक्रमों की रूपरेखा प्रस्तुत की गई थी। वह एक पूर्ण लेख

था। तब ठीक-ठीक पता चला कि क्यों उन्हें पूर्णतावादी माना जाता है। उस एक लेख से लेखन, संपादन के संदर्भ में मुझे बहुत कुछ सीखने का अवसर मिला।

मुले जी जिस विषय पर लिखते थे उस विषय पर खूब चर्चा भी करते थे जिसका लाभ यह होता था कि लेख में वर्णित बातों के अलावा भी बहुत कुछ जानने-समझने का अवसर मिलता था। भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम पर लिखे लेख पर हुई चर्चाओं में उन्होंने मुझे इस विषय का विराट दर्शन कराया।

अब बात 26 मई 1999 की है। भारत ने पी.एस.एल.वी.-सी2 की दूसरी उड़ान में एक भारतीय उपग्रह आई. आर.एस.-पी4 (ओशनसैट) और दो विदेशी उपग्रहों को अंतरिक्ष में छोड़ कर एक और महत्त्वपूर्ण सफलता हासिल की थी। 'आविष्कार' के जुलाई 1999 अंक को प्रेस में भेजने की तैयारी चल रही थी। मैंने मुले जी से इस विषय पर लेख भेजने का आग्रह किया। अपनी अति व्यस्तता के कारण निर्धारित सीमा के अंदर लेख भेजने में उन्होंने असमर्थता व्यक्त करते हुए कहा कि ''तुम खुद क्यों नहीं लिखते, तुम खुद लिखो। तुमसे इस विषय पर जितनी बातें हुई हैं उससे मुझे पक्का विश्वास है कि लिख लोगे और अच्छा लिखोगे।''

उनकी प्रेरणा से मैंने 'आविष्कार' के जुलाई 1999 अंक के लिए ''भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम का नए युग में पदार्पण'' शीर्षक से लेख तैयार किया। प्रकाशित लेख पढ़ने के बाद उन्होंने कहा, ''अच्छा लिखा है, अब इस विषय पर आगे तुम ही लिखना''।

अक्तूबर 2008 में भारत के चंद्रयान-1 के सफल प्रमोचन के बाद 'आविष्कार' 2008 अंक भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम पर एक विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया गया। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन के तत्कालीन अध्यक्ष श्री जी. माधवन नायर और भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ. के. कस्तूरीरंगन ने भी इस अंक की खूब सराहना की। इस अंक में अन्य छः लेखों के साथ मेरा लेख 'भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम की विकास यात्रा' भी प्रकाशित हुआ था। इस विषय पर मेरे लेखन और इस विशेषांक के मूल में मुले जी हैं, जिन्होंने मुझमें इस विषय के प्रति रुचि जगाई, लिखने के लिए प्रेरित किया और इस विषय पर एक विशेषांक को प्रकाशित करने योग्य बनाया।

इसरो के अभियानों पर 'आविष्कार' में लेखों का प्रकाशन जारी रहा। इसरो के विभिन्न केंद्रों के पुस्तकालयों द्वारा 'आविष्कार' पत्रिका खरीदी जाने लगी। फिर आया वह विशेष दिन, जब 24 सितम्बर 2014 को भारत के मंगलयान ने मंगल की कक्षा में सफलतापूर्वक प्रवेश कर एक नया इतिहास रचा। भारत के मंगल अभियान की पृष्ठभूमि में 'आविष्कार' के नवम्बर 2014 अंक में भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम पर विशेष सामग्री प्रकाशित की गई। उसी माह दिल्ली में आयोजित एक कार्यक्रम में इसरो के पूर्व अध्यक्ष प्रो. यू.आर. राव; इसरो के तत्कालीन अध्यक्ष डॉ. के. राधाकृष्णन्; मार्स आर्बिटर मिशन परियोजना के निदेशक एस. अरुणन; प्रथम चंद्रयान परियोजना के निदेशक डॉ. एम. अन्नादुरई; और इसरो के वर्तमान अध्यक्ष डॉ. के. सिवन से बातचीत करने और उन सभी को 'आविष्कार' का नवम्बर 2014 अंक भेंट करने का अवसर मिला। इसके बाद 'आविष्कार' पत्रिका इसरो के और भी केंद्रों द्वारा मंगाई जाने लगी और अब इसकी ई-कॉपी को भी 'सर्कुलेट' किया जाता है। इसके मूल में भी मुले जी ही हैं, भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम से साक्षात्कार करा कर मुले जी ने इस पत्रिका को इस योग्य बनाया।

मुले जी ने 'आविष्कार' के लिए विभिन्न विषयों पर लिखा। उनका हर लेख अपने आप में विशिष्ट और उस विषय का प्रामाणिक दस्तावेज है।

हरिद्वार में वर्ष 1998 में आयोजित कुंभपर्व के अवसर पर 'आविष्कार' में मुले जी का लेख 'कुंभपर्व: एक खगोल वैज्ञानिक विवेचन' प्रकाशित हुआ था। उस लेख में मुले जी ने हरिद्वार और अन्य तीन स्थानों में कुंभपर्व के आयोजन के आधार को प्रारंभ में ही समझा दिया था— ''कुंभ का यह महापर्व समुद्र-मंथन की पौराणिक कथा पर आधारित है। मगर देश के चार स्थानों में कुंभपर्व का आयोजन विशिष्ट ग्रहयोग के अनुसार होता है; इस प्रकार—

1. बृहस्पति के कुंभ राशि में और सूर्य के मेष राशि में होने पर हरिद्वार में कुंभ होता है।

2. बृहस्पति के वृषभ राशि में और सूर्य के मकर राशि में होने पर प्रयाग में कुंभ होता है।

3. बृहस्पति के सिंह राशि में और सूर्य के भी सिंह राशि में होने पर नासिक में कुंभ होता हे।

4. बृहस्पति के सिंह राशि में और सूर्य के मेष राशि में होने पर उज्जैन में कुंभ होता है।

बृहस्पति ग्रह के सिंह राशि में होने पर नासिक और उज्जैन में कुंभ होते हैं, इसलिए इन्हें सिंहस्थ पर्व भी कहते हैं।''

लेख में उन्होंने कुंभपर्व से जुड़ी पौराणिक कथाओं, राशियों, राशिचक्र, तारों की स्थितियों, प्राचीन काल गणना, भारतीय ज्योतिष के विकासक्रम,

संबंधित खगोलीय घटनाओं आदि-आदि की चर्चा करते हुए कुंभपर्व के अलावा भी बहुत कुछ प्रस्तुत किया।

मुले जी ने आविष्कार के लिए कुछ वैज्ञानिकों की जीवनियां भी लिखीं। उनकी लिखी जीवनियों में उन वैज्ञानिक की पारिवारिक-सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि, बचपन, जीवन के संघर्ष, उनके वैज्ञानिक कार्य और योगदान को पढ़ने से उन वैज्ञानिकों के व्यक्तित्व और कृतित्व की विस्तृत जानकारी मिलती है।

भारत द्वारा पोकरण में 11 और 13 मई 1998 को नाभिकीय विस्फोट किए जाने पर एक समसामायिक लेकिन अति संवेदनशील विषय सामने आया। इस विषय पर समाचारों के आधार पर 'पोकरण-2' की मात्र गौरव गाथा वाले लेख का 'आविष्कार' में प्रकाशन मेरी दृष्टि में निरर्थक था। इसलिए कुछ विज्ञान लेखकों के इस विषय पर 'आविष्कार' के लिए लेखन के प्रस्ताव को मैंने स्वीकार नहीं किया। विषय की गंभीरता को समझते हुए मैंने मुले जी से इस विषय पर लिखने का विशेष आग्रह किया। पहले तो उन्होंने यह कह कर मेरा आग्रह स्वीकार करने में असमर्थता व्यक्त की कि उन्हें लगभग दो सप्ताह के लिए दिल्ली से बाहर जाना है। लेकिन जब मैंने कहा कि मैं दो सप्ताह तक प्रतीक्षा कर सकता हूं तो वे इस विषय पर लिखने के लिए राजी हो गए। उन्होंने मुझे बताया कि अपनी यात्रा के दौरान वे इसकी रूपरेखा तैयार कर लेंगे और जरूरी संदर्भ सामग्री साथ ले जाएंगे। दिल्ली वापस लौटने के तुरंत बाद उन्होंने पोकरण-2 की पृष्ठभूमि में एक विस्तृत लेख भेजा, जिसे हम 'आविष्कार' के जून 1998 अंक में सम्मिलित करने में सफल रहे। लेख का शीर्षक था 'परमाणु विस्फोट गाथाः एलमोगोर्दो से पोकरण-2 तक'। इस लेख में नाभिकीय विखंडन से लेकर तापनाभिकीय संलयन तक के विकासक्रम को शब्दावली और कालानुक्रम के साथ विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया गया था। लेख में न्यू मेक्सिको के एलमोगोर्दो स्थान पर 16 जुलाई 1945 को संपन्न पहले परिपूर्ण परमाणु बम परीक्षण से लेकर 11 व 13 मई 1998 को भारत द्वारा संपन्न नाभिकीय और तापनाभिकीय परीक्षण और फिर पाकिस्तान द्वारा 28 और 30 मई 1998 को किए गए नाभिकीय विस्फोटों तक की चर्चा की गई थी।

सन् 2000 में मानव जीनोम अनुक्रमण के उद्घाटन के अवसर पर 'आविष्कार' के अगस्त 2000 अंक में 'खुल गई है मानव जीनोम की कुंडली' शीर्षक से मुले जी का लेख प्रकाशित हुआ। इस लेख में उन्होंने डीएनए की संरचना की खोज से शुरू कर आण्विक जीवविज्ञान की पूरी विकास यात्रा को प्रस्तुत किया था। लेख के साथ बॉक्स में आनुवंशिकी का विकासक्रम और शब्दावली के माध्यम से उन्होंने मानव जीवन की कुंडलिनी के विविध आयामों का अर्थपूर्ण और विचारोत्तेजक विवेचन प्रस्तुत किया था।

मुले जी ने 'कोशिका में विद्यमान अणु के स्तर पर जीवन का अध्ययन'; (दिसम्बर 1997); 'संचार साधनः अतीत से वर्तमान तक' (मई 1998); ''भारतीय विज्ञान और प्रौद्योगिकीः आजादी से पहले और आजादी के बाद' (अगस्त 1998); 'कब शुरू होगी 21वीं शताब्दी?' (नवम्बर 1999); 'बीसवीं सदी में भारतीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी' (जनवरी 2000); 'चिकित्सा पद्धतियां और महान चिकित्सक' (अप्रैल एवं मई 2000); 'कैलेंडरों की कहानी' (जनवरी 2001); 'कहां हैं वे हमजोली हमारे?' (अप्रैल 2001); 'भारतीय रॉकेट जी.एस.एल.वी. की प्रथम उड़ान– कितनी सफल' (जुलाई 2001) जैसे विविधितापूर्ण लेखों, विभिन्न वैज्ञानिकों तथा गणितज्ञों की जीवनियों और 'आकाश की झांकी' लेखमाला से 'आविष्कार' को गौरवान्वित किया।

इस, गुणाकर मुले स्मृति अंक में 'आविष्कार' में पूर्व प्रकाशित मुले जी के लेखों में से तीन– संज्ञा नहीं, एक विशेषण है रामन्, परमाणु विस्फोट गाथाः एलमोगोर्दो से पोकरण-2 तक और खुल गई है मानव-जीवन की कुंडली को पुनः प्रकाशित कर रहे हैं। 'संज्ञा नहीं, एक विशेषण है रामन्' लेख में आपको चंद्रशेखर वेंकट का जीवन वृत्तांत पढ़ने का अवसर मिलेगा। इससे आप मुले जी के जीवनी लेखन की शैली से भी परिचित होंगे।

डॉ. सुबोध महंती को गुणाकर मुले जी के साथ निकट से काम करने का अवसर मिला है। वे अपनी चर्चाओं में अक्सर मुले जी के लेखन के विषय पर बात करते हैं। डॉ. महंती ने इस अंक में मुले जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को उजागर करते हुए उनके जीवन की एक झलक प्रस्तुत की है। मुझे याद है कि बीस साल पहले मुझसे मुले जी ने कहा था कि ''तुम डॉ. महंती को 'आविष्कार' में लिखने के लिए कहो।''

विषयों का विराट दर्शन कराने वाले गुणाकर मुले जी की स्मृति में प्रकाशित इस अंक से इस महान विज्ञान लेखक के व्यक्तित्व और कृतित्व की मात्र एक झलक ही देखने को मिल सकती है– उनकी रचनाओं के अध्ययन से उनके कृतित्व के विराट दर्शन किए जा सकते हैं।

गुणाकर मुले : विज्ञान लेखन के प्रति पूर्णतः समर्पित एक जीवन

— डॉ. सुबोध महंती

यह कहना शायद अतिशयोक्ति नहीं होगा कि गुणाकर मुले हिंदी में सबसे अधिक चर्चित, सबसे अधिक पठित एवं सबसे प्रतिष्ठित विज्ञान लेखक हैं। हिंदी विज्ञान लेखन में उनके योगदान के तुल्य कोई दूसरा उदाहरण देखने को नहीं मिलता। उन्हें हिंदी विज्ञान लेखन का आधार स्तंभ माना जाता है। हिंदी विज्ञान लेखन अभियान के अमिट हस्ताक्षर, विज्ञान परिषद प्रयाग के प्रधानमंत्री प्रोफेसर शिवगोपाल मिश्र ने गुणाकर मुले के बारे में लिखा है: "श्री गुणाकर मुले हिंदी विज्ञान लेखकों में सर्वाधिक चर्चित व्यक्ति रहे हैं। उन्होंने महाराष्ट्र के एक गांव से चलकर इलाहाबाद विश्वविद्यालय से गणित में एम.ए. परीक्षा उत्तीर्ण करने तक जो कंटीला मार्ग तय किया, वह उनकी सफलता का पर्याय बना। वे चाहते तो साहित्यकार बन सकते थे किंतु उन्होंने विज्ञान लेखन को अपना जीवनाधार बनाया। उन्होंने बच्चों के लिए विज्ञान लिखना शुरू किया किंतु बाद में उच्चस्तरीय लेखन में उतर आये। विज्ञान लेखन के क्षेत्र में उन्होंने जिस निष्ठा का परिचय दिया, वह अनूठा है। ऐसा निष्ठापूर्ण समर्पण एकमात्र महापंडित राहुल सांकृत्यायन के जीवन में देखने को मिलता है। यद्यपि राहुल जी के सम्पर्क में वे अधिक नहीं रहे किंतु उनकी जीवन शैली एवं उनके प्रगाढ़ पांडित्यपूर्ण लेखन का अनुसरण उन्होंने अवश्य किया।" ('विज्ञान', गुणाकर मुले स्मृति विशेषांक, मार्च 2010)

अपने जीवन काल में मुले जी ने 40 से अधिक पुस्तकें एवं 4000 से अधिक लेख लिखे। उनकी मृत्यु के बाद भी उनके लेखों को संकलित करके अनेक पुस्तकें प्रकाशित की गई हैं। उनकी बहुत सी किताबों का 10 से अधिक बार पुनर्मुद्रण हुआ है। मुले जी आकाशवाणी और दूरदर्शन में कई वर्षों तक विज्ञान कार्यक्रम निर्माण में सहयोग करते रहे। उनके खुद के 150 से अधिक रेडियो कार्यक्रम प्रसारित हुए। गुणाकर मुले का समूचा जीवन विज्ञान लेखन के प्रति पूरी तरह समर्पित था। वे कहा करते थे: "मैं अध्ययन और लेखन के लिए ही पूर्णतः समर्पित हूँ।"



गुणाकर मुले (3 जनवरी 1935–16 अक्तूबर 2009)

गुणाकर मुले का जन्म 3 जनवरी, 1935 को महाराष्ट्र प्रदेश के विदर्भ क्षेत्र में अमरावती जिले के सिंदी बुजरूक नामक गांव में हुआ था। उनके जन्म के समय अमरावती जिला तत्कालीन मध्य प्रदेश (सेंट्रल प्रॉविंस) में हुआ करता था जो आगे चलकर बॉम्बे प्रदेश का हिस्सा बना और जब सन् 1960 में महाराष्ट्र प्रदेश का गठन हुआ तो उसका हिस्सा बन गया। उनके पिता एक गरीब किसान थे। गुणाकर मुले अपने गांव में कक्षा आठ तक पढ़ाई करने के बाद वर्धा चले गए, जहां उन्होंने मैट्रिक एवं इंटरमीडियट परीक्षा उत्तीर्ण की। वर्धा में मुले जी ने पाली एवं संस्कृत भाषा का भी अध्ययन किया। वर्धा में रहने के दौरान मुले जी का परिचय बौद्ध भिक्षु भदंत आनंद कौसल्यायन (1905-1988) से हुआ। वर्धा में ही उनका परिचय महापंडित राहुल सांकृत्यायन (1893-1962) के साथ हुआ था, जो बहुभाषाविद्, बहुविषयविद् एवं अथक घुमक्कड़ होने के साथ-साथ एक उच्च कोटि के लेखक भी थे। इन दोनों महान विभूतियों ने मुले जी के जीवन को काफी प्रभावित किया।

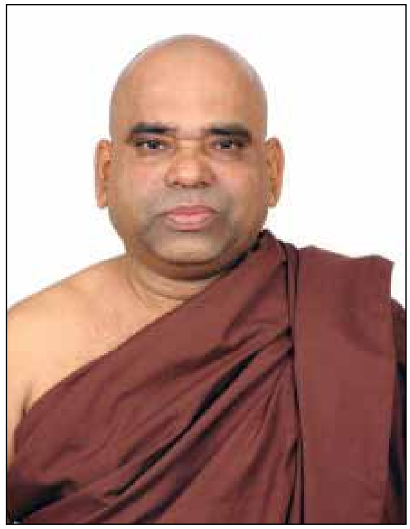
मुले जी के पिता चाहते थे कि वे अपने मामा की तरह प्राथमिक विद्यालय में शिक्षक बनें मगर उन्होंने उच्च अध्ययन का संकल्प कर लिया था। आनंद कौसल्यायन से प्रेरित होकर मुले जी इलाहाबाद पहुंचे और वहां से उन्होंने बी.ए. एवं एम.ए. की डिग्रियां हासिल कीं। बी.ए. में उन्होंने अंग्रेजी साहित्य, भूगोल व गणित की पढ़ाई की और गणित में ही एम.ए. की डिग्री हासिल करने के बाद इलाहाबाद विश्वविद्यालय के गणित विभाग में अनुसंधान कार्य शुरू किया मगर आगे चलकर अनुसंधान कार्य छोड़ दिया और

अपने गांव लौट गए जहां उन्होंने आम लोगों के लिए एक स्कूल शुरू किया जिसका नाम रखा 'जनता स्कूल'। सन् 1971 में मुले जी दिल्ली आ गए एवं 16 अक्तूबर, 2009 तक अर्थात् मृत्युपर्यंत दिल्ली में ही रहे।

मुले जी ने विज्ञान लेखन को ही अपना कॅरियर बनाने का निश्चय किया और जिंदगी के आखिरी दिन तक इसी कार्य में लगे रहे। जैसा कि प्रोफेसर शिवगोपाल मिश्र जी ने भी उल्लेख किया है कि मुले जी ने विज्ञान लेखन को अपना कॅरियर इसलिए नहीं बनाया कि उनके पास और कोई विकल्प नहीं था। गणित में एम.ए. की डिग्री प्राप्त करने के बाद अगर वे चाहते तो कोई-न-कोई नौकरी हासिल कर सकते थे, मगर उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने देश में विज्ञान चेतना सृजन तथा युवा पीढ़ी को विज्ञान के प्रति उत्साहित करने को ही अपना उत्तरदायित्व समझा। विज्ञान लेखक एस.के. तिवारी जी ने सही लिखा है कि– "गुणाकर जी आजादी के बाद खांटी बुद्धिजीवियों की उस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते थे जिनमें नव स्वतंत्र देश की जागरूक पीढ़ियां तैयार करने का स्वबोधित जज्बा कूट-कूट कर भरा हुआ था। मराठी भाषी होने के बावजूद उन्होंने व्यापक राष्ट्रहित में हिंदी में लेखन किया।" ('विज्ञान', मार्च 2010)

अपनी मातृभाषा मराठी को छोड़कर अंग्रेजी के बजाए हिंदी में लिखने का निर्णय लेना निश्चय ही मुले जी का एक साहसिक एवं चुनौतीपूर्ण निर्णय था। यह इसलिए कि हिंदी न तो उनकी मातृभाषा थी और न ही हिंदी में उन्होंने औपचारिक शिक्षा प्राप्त की थी। इस संदर्भ में उन्होंने एक पुस्तक (अल्बर्ट आइंस्टाइन, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2009) में लिखा है: "मैंने हिंदी का विधिवत् अध्ययन नहीं किया है, मेरी हिंदी व्यापक स्वाध्याय और लगभग एक दशक तक के मेरे इलाहाबाद निवास की देन है। एक बात और: मेरी पत्नी हिंदी भाषी हैं। मैंने अधिकतर हिंदी में लिखा है। 'संसार के महान गणितज्ञ', 'ब्रह्माण्ड-परिचय', 'तारों भरा आकाश' जैसे मेरे ग्रंथ, जिनका भरपूर स्वागत हुआ है, प्रमाणित कर देते हैं कि हिंदी (और अन्य कई भारतीय भाषाएं) आधुनिक गणित, भौतिकी व ज्योतिर्विज्ञान जैसे विषयों को वहन करने में सहज समर्थ है। मेरी दृढ़ मान्यता है कि आपेक्षिकता व क्वाटंम सिद्धांत की बुनियादी धारणाओं को अंग्रेजी भाषा की अपेक्षा हिंदी में अधिक स्पष्टता से प्रस्तुत किया जा सकता है।"





पंडित राहुल सांकृत्यायन (बाएं) और आनंद कौसल्यायन (दाएं) जिन्होंने मुले जी के जीवन पर गहरा प्रभाव डाला

मुले जी का मानना था कि हिंदी विज्ञान साहित्य को पाठकों की कमी नहीं है। इस संबंध में उन्होंने कहा था: "हिंदी के साहित्यकार व आलोचक वैज्ञानिक साहित्य की उपेक्षा करके हिंदी का बहुत बड़ा नुकसान कर रहे हैं। हिंदी में विज्ञान के पाठकों की संख्या कथा-कविता के पाठकों से बहुत ज्यादा है। मेरा यह प्रयास रहा है कि सरल भाषा में नए-नए विषयों पर लिखूं। उन विषयों पर जिन पर पहले नहीं लिखा गया है।" (श्री एस.के. तिवारी का 'विज्ञान' पत्रिका के मार्च 2010 अंक में प्रकाशित लेख, 'हिंदी विज्ञान लेखन के आधार स्तंभ श्री गुणाकर मुले' से उद्धृत)।

उनकी लेखन शैली सरल एवं सीधी थी। वे अपने लेखन में अनावश्यक शब्दों का इस्तेमाल नहीं करते थे एवं पाठक को इधर-उधर न घुमाकर सीधे विषय पर ले जाते थे। उनका शब्द चयन एवं तथ्य संयोजन उनके लेख को पठनीय तथा सुगम बना देता था। मैं यहां उनकी लेखन शैली से परिचित कराने के लिए, विशेषकर उन पाठकों के लिए जो मुले जी के लेखन शैली से परिचित नहीं हैं, उनकी दो पुस्तकों के कुछ अंश उद्धृत करना चाहूंगा। पहला उद्धरण है उनकी चर्चित पुस्तक 'आकाश दर्शन' से: "धरती का मानव हजारों वर्षों से आकाश के तारों को निहारता आया है। सभी के मन में सवाल उठते हैं– आकाश में कितने तारें हैं? ये हमसे कितनी दूर हैं? कितने बड़े हैं? ये किन चीजों से बने हैं? ये सतत क्यों चमकते हैं? रात में आकाश के नजारे के बारे में ऐसे अनेक सवाल

हमारे दिमाग में कोलाहल मचाते हैं।

आदिम मानव द्वारा कुतूहलवश आकाश के तारों की गति स्थिति का अध्ययन शुरू कर दिया। फिर जब पता चला कि तारों से दिशा तथा काल का ज्ञान होता है, तब उनका अधिक गहराई से अध्ययन होने लगा। आदिम समाजों ने आकाश के तारा-समूहों में तरह-तरह की आकृतियों की कल्पना की, उनके बारे में कथाएं गढ़ीं और उन्हें नाम दिए, वे नाम आज भी प्रचलित हैं।" (गुणाकर मुले, 'आकाश दर्शन', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993)

दूसरा उदाहरण है उनकी पुस्तक 'आर्यभट से: "पाटलीपुत्र नगर से थोड़ी दूर एक आश्रम में कुछ दूसरा ही माहौल था। वहां भी आज बड़ी चहल-पहल थी लेकिन वह चहल-पहल कुछ दूसरे प्रकार की थी। वह आश्रम भी कुछ भिन्न प्रकार का था। टीले पर बसे उस आश्रम के लंबे-चौड़े आंगन में तांबे, पीतल और लकड़ी के तरह-तरह के यंत्र रखे हुए थे। उनमें से कुछ यंत्र गोल थे, कुछ कटोरे के आकार के, कुछ वर्तुलाकार और कुछ शंकु के आकार के थे।

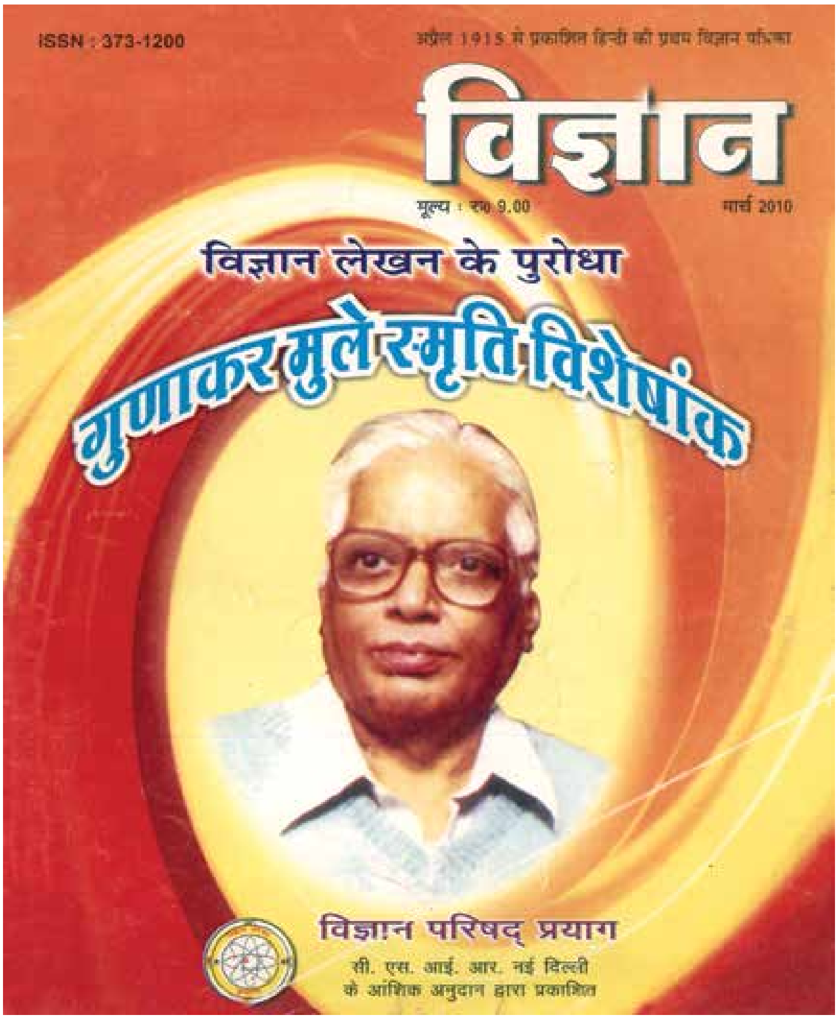
दरअसल, वह एक वेधशाला थी। आकाश के ग्रहों और तारों की स्थितियों और गतियों को जानने के लिए उन यंत्रों का उपयोग होता था। उस दिन उन यंत्रों के इर्द-गिर्द कई नामी ज्योतिषी और बहुत से विद्यार्थी एकत्र हुए थे। वहां भी ग्रहण के उस अवसर की आतुरता से बाट देखी जा रही थी।

वहां के ज्योतिषी भलीभांति जानते थे कि ठीक किस क्षण ग्रहण लगने वाला है, और ठीक किस क्षण छूटेगा। उन्होंने हिसाब लगाकर पहले से ही भविष्यवाणी की थी कि ठीक किस समय ग्रहण लगेगा। यह कहां-कहां दिखाई देगा और कितने समय तक रहेगा। आज उन्हें देखना था कि उनका हिसाब ठीक निकलता है या नहीं। इसलिए सभी ज्योतिषी उत्सुकता से उस क्षण का इंतजार कर रहे थे।

उनमें से कुछ आचार्य और विद्यार्थी इस बात पर भी चर्चा कर रहे थे कि ग्रहण क्यों लगता है। कुछ आचार्य यह भी कह रहे थे कि इसमें बहस करने की कोई जरूरत नहीं है। पुराणों में लिखा है, व दूसरे धर्मग्रंथों में भी लिखा है, कि राहु नाम का राक्षस ही सूर्य और चंद्र को निगलता है। तभी ग्रहण लगते हैं। हमें धर्मग्रंथों की बातों पर यकीन करना चाहिए।

लेकिन वहां एक तरुण विद्यार्थी ऐसा भी था जो यह मानने के लिए तैयार नहीं था कि किसी राहु के कारण ग्रहण लगता है। वह साधारण विद्यार्थी नहीं था। वह करीब बीस साल का तरुण पंडित था। दक्षिण भारत के गोदावरी नदी तट के अश्मक जनपद से ज्योतिष और गणित का गहन अध्ययन करने के लिए वह इतनी दूर पाटलीपुत्र आया था। वह गणितशास्त्र का पंडित था। बड़े-बड़े आचार्य उसकी बुद्धि का लोहा मानते थे। मगर उसके विचार क्रांतिकारी थे। वह आंख मूंदकर शास्त्रों की पुरानी बातें मानने को तैयार नहीं था। इसलिए जब-तब अपने सही विचार सुना देता था। पुराणपंथी लोग तिलमिला जाते थे।

आज सूर्य ग्रहण का दिन था।



विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा प्रकाशित 'गुणाकर मुले स्मृति विशेषांक' का आवरण पृष्ठ



विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद और विज्ञान प्रसार, नई दिल्ली द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित विज्ञान परिभाषा कोष पर परिचर्चा में भाग लेते हुए गुणाकर मुले। इस अवसर पर प्रो. चंद्रिका प्रसाद, प्रो. शिवगोपाल मिश्र, डॉ. सुबोध महंती, डॉ. दिनेश मणि आदि उपस्थित थे।

इसलिए बड़े यकीन के साथ वह सुना रहा था, समझा रहा था– पुराणों और धर्मग्रंथों में लिखी यह बात सच नहीं है कि राहु नाम का कोई राक्षस सूर्य को निगल जाता है और दान-पुण्य करने से सूर्य देवता को छुटकारा मिलता है।" (गुणाकर मुले, 'आर्यभट', ज्ञान-विज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991)।

उपरोक्त उदाहरणों से हम देखते हैं कि मुले जी की लेखन शैली कितनी सहज, सटीक एवं रोचक है। विषय को इस तरह से प्रस्तुत करते थे कि पाठकों के मन में कौतूहल पैदा हो, वे प्रश्न पूछने के लिए प्रेरित हों, जो विज्ञान का आधार है।

उनकी लेखन शैली पर टिप्पणी करते हुए प्रख्यात हिंदी संपादक नारायण दत्त जी का कहना था, "उनकी शैली सीधी थी। वे बिना इधर-उधर की बातें जोड़े, विषय पर आते थे और पाठक को अपने साथ लेकर आगे बढ़ते थे। मगर सपाट बयानों से भी बचते थे। वे मानते थे कि लेख की रोचकता तथ्यों के चयन और प्रस्तुति में होती है और अवांतर बातों में पाठक को भटकाना अनावश्यक ही नहीं, अन्यायपूर्ण भी है। इसके अनुरूप ही उनकी भाषा भी संस्कारपूर्ण किंतु सहज, आलंकारिता से मुक्त किंतु प्रासादिक अर्थात् आसानी से समझ में आने वाली होती थी। ('विज्ञान', मार्च 2010)।

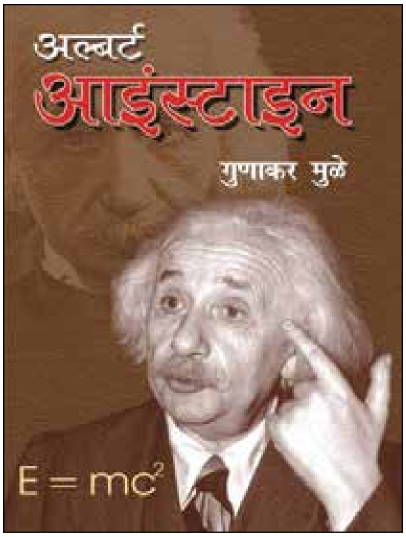
मुले जी किसी भी विषय पर लेख लिखने के लिए अथक परिश्रम करते थे, उनका प्रयास रहता था कि उस विषय पर उपलब्ध हर संदर्भ को खंगालें। विज्ञान लेखन के साथ-साथ उन्होंने स्वाध्याय जारी रखा, उनका स्वाध्याय वाकई काफी विस्तृत था। इस संदर्भ में नारायण दत्त जी का कहना था: "मुले जी की जिज्ञासा और स्वाध्याय का दायरा आश्चर्यजनक रूप से विशाल था। भारतीय धर्म, दर्शन, इतिहास, निधिशास्त्र और पुरातत्व से लेकर आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओं में उनकी गहरी रुचि थी। उच्च शिक्षा उन्होंने गणित में पाई थी। इसलिए जानकारी की सुनिश्चितता और प्रतिपादन की तर्कसंगतता की उन्हें विशेष चिंता रहती थी। अच्छी याद्दाश्त के धनी होते हुए भी वे कोई महत्त्वपूर्ण

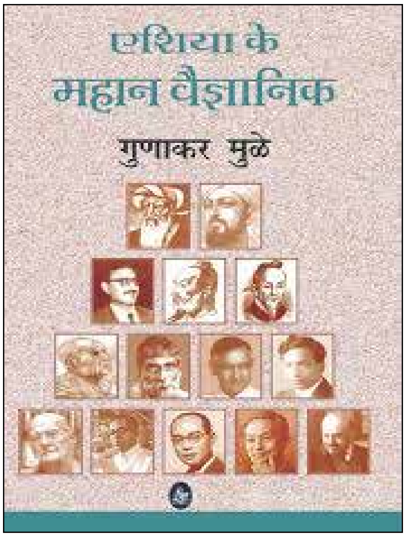


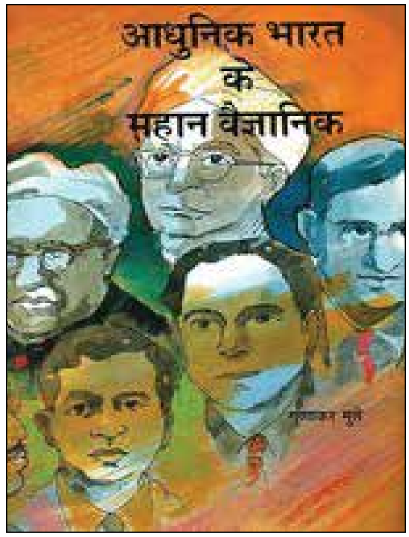
मुले जी अपने निजी पुस्तकालय में

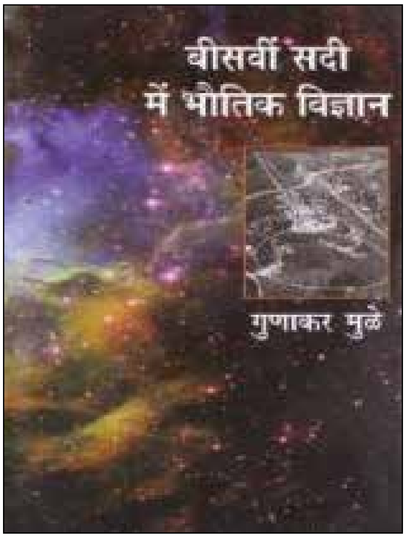
तथ्य लेख में जोड़ने से पहले उसे मूलस्रोतों और संदर्भ ग्रंथों से चैक करने से कतराते नहीं थे। हिंदी, मराठी और अंग्रेजी के अलावा संस्कृत व पाली से वे अच्छी तरह परिचित थे। इसलिए ज्ञान के अनेक कोठारों तक उनकी सीधी पहुंच थी। हर बात के लिए लाइब्रेरी की शरण में न जाना पड़े इसके लिए उन्होंने खासा बड़ा निजी पुस्तक संग्रह घर पर अपने खर्च से जुटा लिया था, जिसमें ऊपर बताई भाषाओं में विविध विषयों की 7000-8000 पुस्तकें और शास्त्रीय (एकेडेमिक) पत्रिकाओं की जिल्द बंधी फाइलें थीं।" ('विज्ञान', मार्च 2010)। इस संदर्भ में प्रोफेसर शिवगोपाल मिश्र जी ने भी लिखा है: "हमारे विचार में मुले जी का विज्ञान लेखन प्रारंभ से अनुसंधानपरक लेखन रहा है। इसका कारण उनका गणितज्ञ होना था। वे जिस विषय पर लिखना होता, उसकी तह तक जाने का प्रयास करते और तब लेखनी चलाते। अपनी पुस्तक के हर अध्याय के अंत में वे टिप्पणियां अवश्य देते। ये टिप्पणियां उनके अध्ययन की गंभीरता को प्रदर्शित करने वाली होती रही हैं। वे पहले आदि स्रोत तक पहुंचने का प्रयास करते और अंत तक यदि कोई नई जानकारी प्राप्त होती तो उसे टिप्पणी के रूप में जोड़ देते।" ('विज्ञान', मार्च 2010)।

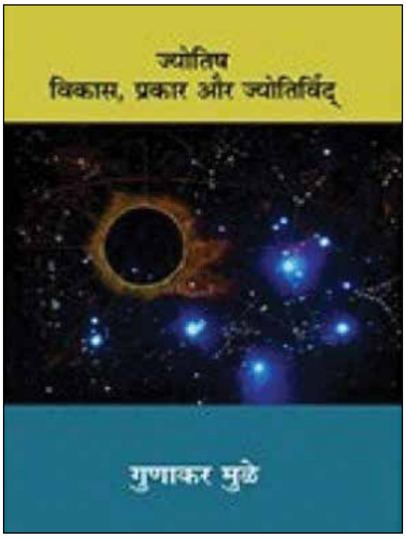
मुले जी ने गणित, खगोल विज्ञान, वैज्ञानिक जीवनियां, विज्ञान का इतिहास, पुरानी लिपि, मुद्रा शास्त्र, इतिहास, संस्कृति तथा कई अन्य विषयों

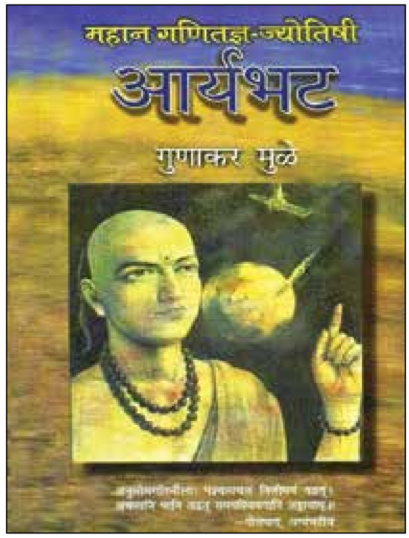












पर लिखा है। उनकी पुस्तकों की सूची नीचे दी जा रही है। मगर यह सूची पूर्ण नहीं है।

गणित

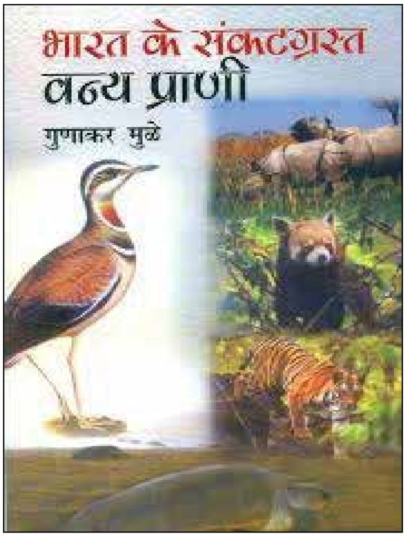
1. भारतीय अंक पद्धति की कहानी
2. अंक कथा
3. गणित की पहेलियां
4. ज्यामिति की कहानी
5. भास्कराचार्य
6. आर्यभट
7. पास्कल
8. आर्किमीडीज
9. संसार के महान गणितज्ञ
10. गणित से झलकती है संस्कृति

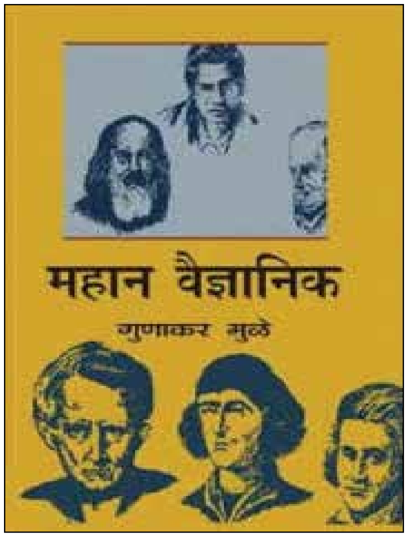
खगोल विज्ञान

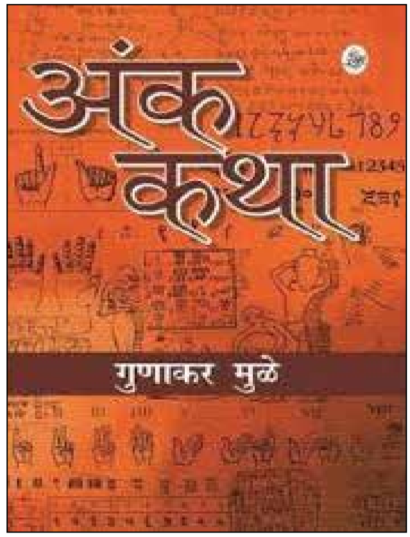
1. आकाश दर्शन
2. सौर मंडल
3. सूर्य
4. नक्षत्र लोक
5. धरती
6. चंद्रमा
7. अंतरिक्ष यात्रा
8. विश्व यांत्रिकी
9. ब्रह्माण्ड का विस्तार और विकास
10. ब्रह्माण्ड में जीवन
11. ज्योतिष विज्ञान की कहानी
12. तारों भरा आकाश
13. सूरज, चांद और सितारे
14. ज्योतिष: विकास, प्रकार और ज्योतिर्विद्
15. ब्रह्माण्ड का परिचय
16. रॉकेट की कहानी

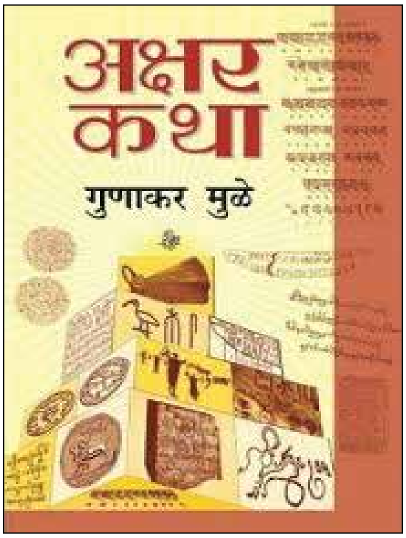
वैज्ञानिक-जीवनियां एवं विज्ञान का इतिहास

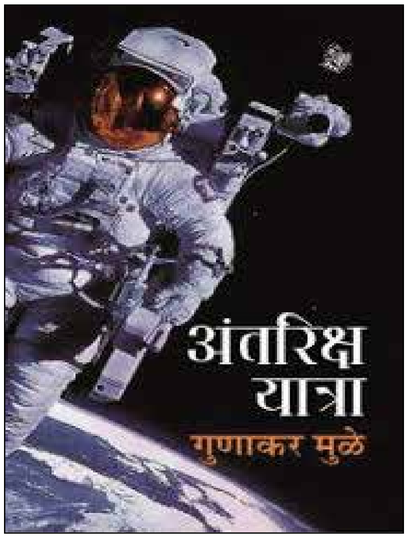
1. प्राचीन भारत के महान वैज्ञानिक
2. आधुनिक भारत के महान वैज्ञानिक
3. महान वैज्ञानिक
4. एशिया के महान वैज्ञानिक
5. मेंडेलीफ
6. अल्बर्ट आइंस्टाइन
7. भारतीय विज्ञान की कहानी
8. भारतीय इतिहास में विज्ञान

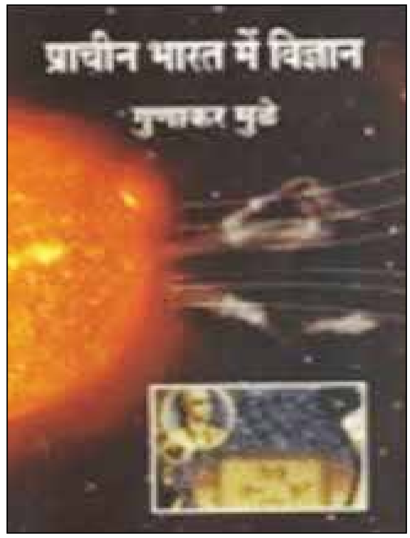












9. महान वैज्ञानिक महिलाएं
10. प्राचीन भारत में विज्ञान

पुरानी लिपि, मुद्रा शास्त्र, इतिहास एवं संस्कृति

1. भारतीय लिपियों की कहानी
2. अक्षर कथा
3. भारतीय सिक्कों का इतिहास
4. महाराष्ट्र के दुर्ग
5. भारत-इतिहास और संस्कृति
6. खंडहर बोलते हैं
7. भारत के प्रसिद्ध किले

अन्य पुस्तकें

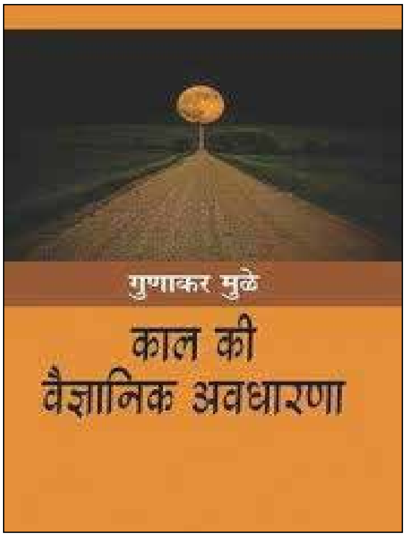
1. हमारी प्रमुख राष्ट्रीय प्रयोगशालाएं
2. कृषि कथा
3. भारत के संकटग्रस्त वन्य प्राणी
4. बीसवीं सदी में भौतिक विज्ञान
5. काल की वैज्ञानिक अवधारणा
6. कम्प्यूटर क्या है?
7. ऊर्जा संकट और हमारा भविष्य
8. आपेक्षिकता सिद्धांत क्या है?

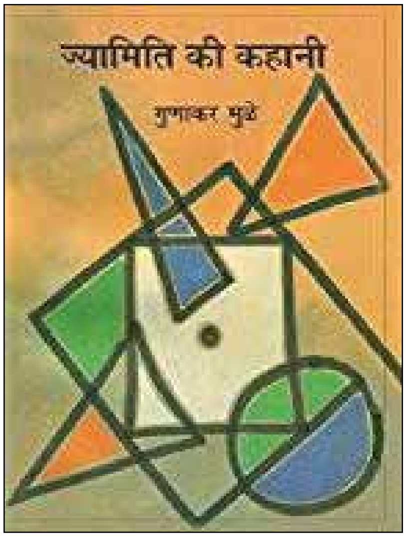
उनकी पुस्तक 'कम्प्यूटर क्या है? इस विषय पर हिंदी में पहली प्रामाणिक पुस्तक थी।

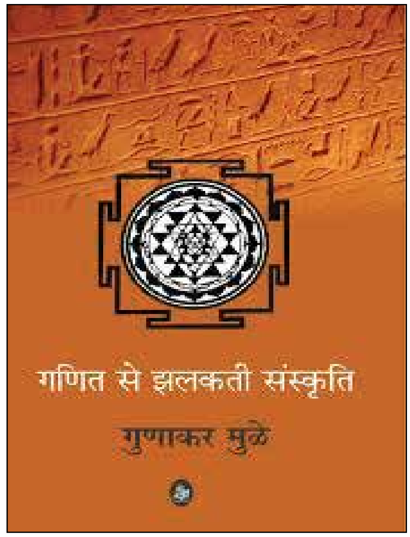
मुले जी ने पंडित राहुल सांकृत्यायन पर तीन किताबें लिखीं–

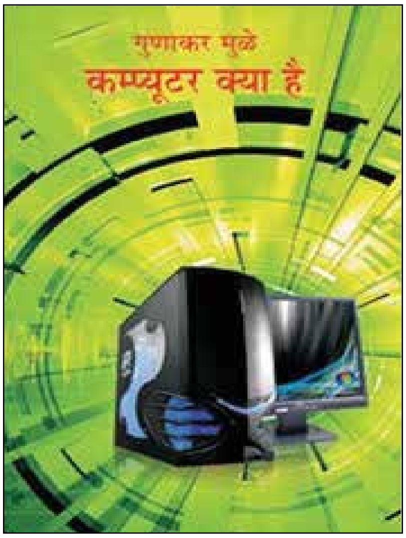
1. महापंडित राहुल सांकृत्यायन: जीवन एवं कृतित्व (नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया)
2. स्वयंभू महापंडित (राजकमल प्रकाशन)
3. राहुल चिंतन (राजकमल प्रकाशन)

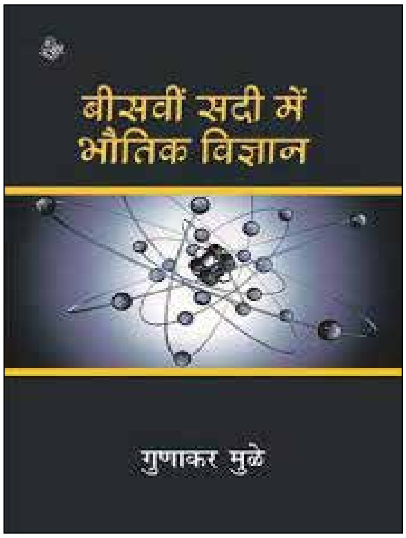
मुले जी की लगभग सभी पुस्तकें राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित की गईं। जैसे कि पहले उल्लेख किया गया है कि मुले जी पंडित राहुल सांकृत्यायन से काफी प्रभावित थे। उनका राहुल सांकृत्यायन के साथ कोई घनिष्ठ निजी संबंध नहीं था। इस संदर्भ में मुले जी ने लिखा है: "मैं स्वयं तो राहुल जी के निकट संपर्क में नहीं रहा, परंतु जिनका राहुल जी के साथ निकट का संबंध रहा है, ऐसे कई व्यक्तियों के साथ मेरा

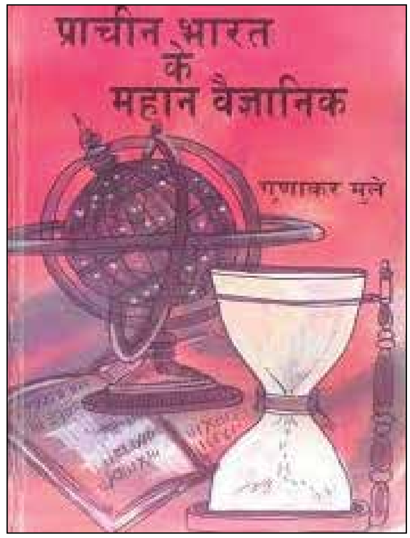






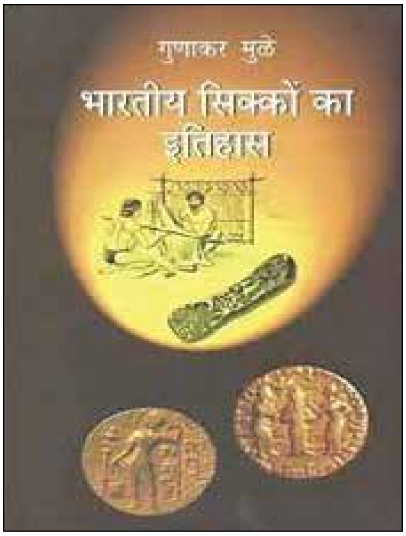


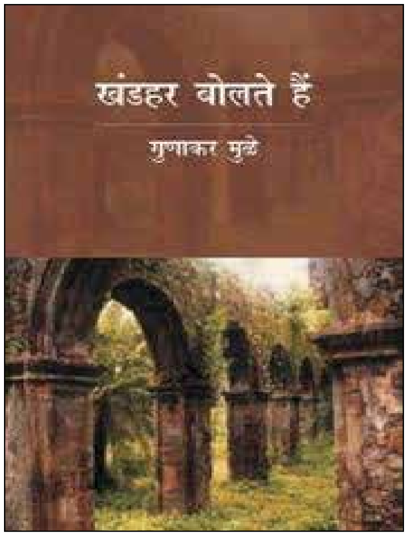


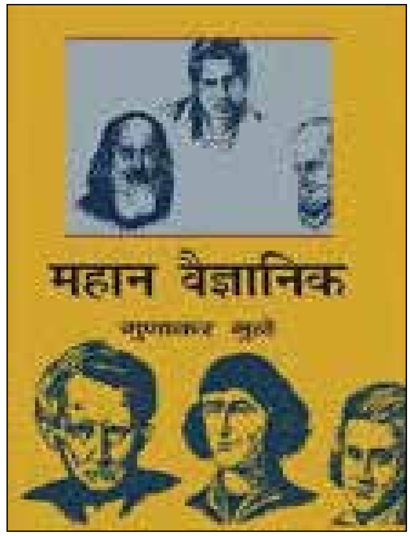


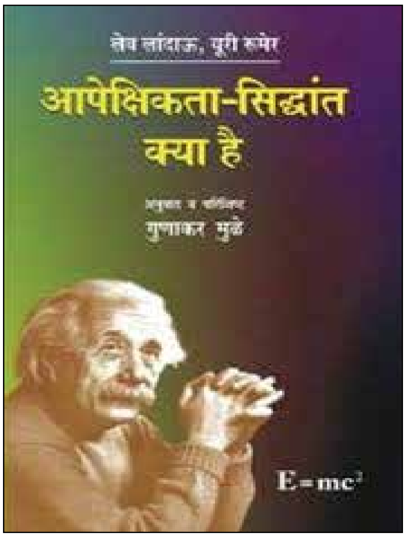
काफी घनिष्ठ संबंध रहा, और कुछ के साथ तो काफी आत्मीय भी। मुझे काठमांडू, कालिंपोंग और कैलानिया (श्रीलंका) जैसे उन दर्जनों स्थानों को भी देखने का मौका मिला जिनसे राहुल जी का गहरा सरोकार रहा है। मगर उनके विराट व्यक्तित्व की काफी सही पहचान मुझे उनके महाप्रयाण के बाद ही हुई—उनके द्वारा पीछे छोड़ी गई 'राहुल-संग्रहालय' की सामग्री को देखने-पढ़ने के बाद।" (गुणाकर मुले, 'महापंडित राहुल सांकृत्यायनः जीवन और कृतित्व', नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, 1993)। मुले जी को भदंत आनंद कौसल्यायन, जो पंडित राहुल सांकृत्यायन के घनिष्ठ मित्र थे, से 50 से अधिक पत्र मिले थे, जिन्हें राहुल जी ने कौसल्यायन जी को लिखा था। मुले जी ने इन पत्रों को टिप्पणियों के साथ राहुल जी पर लिखी गई एक किताब में सम्मिलित किया है।

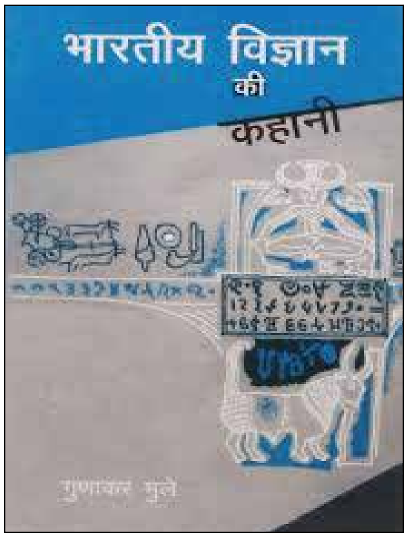
भारत में इसका उदाहरण विरले ही मिलता है कि एक विज्ञान लेखक अपने लेखन से अर्जित आय से जीवनयापन करे। मुले जी ऐसा करने में सफल रहे, वो भी अपनी लेखनी से किसी तरह का समझौता किए बिना। उन्होंने उत्कृष्ट प्रामाणिक विज्ञान साहित्य का सृजन किया है। उन्होंने कहीं नौकरी नहीं की, मगर कुछ संस्थानों के साथ फेलो या संसाधन व्यक्ति (रीसोर्स पर्सन) के रूप में समय-समय पर जुड़े रहे: सांस्कृतिक-स्रोत एवं प्रशिक्षण केंद्र, नई दिल्ली के साथ संसाधन व्यक्ति के रूप में लगभग एक दशक तक जुड़े रहे एवं इसके द्वारा अध्यापकों के लिए आयोजित प्रशिक्षण शिविरों में वैज्ञानिक विषयों पर व्याख्यान देते रहे। भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद के सीनियर फेलो के रूप में भारतीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबंधित साहित्य का अध्ययन-अनुशीलन किया। वे राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली के हिंदी प्रकाश कार्यक्रम के साथ वर्षों तक जुड़े रहे। मुले जी

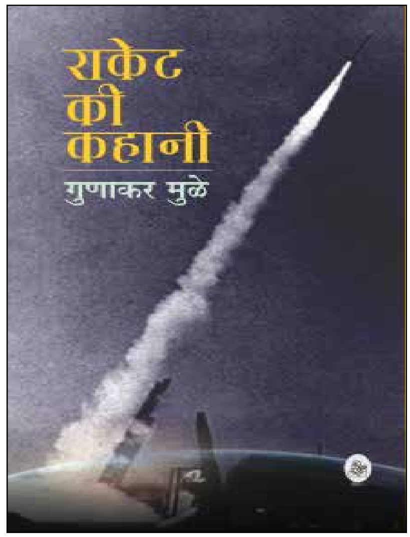










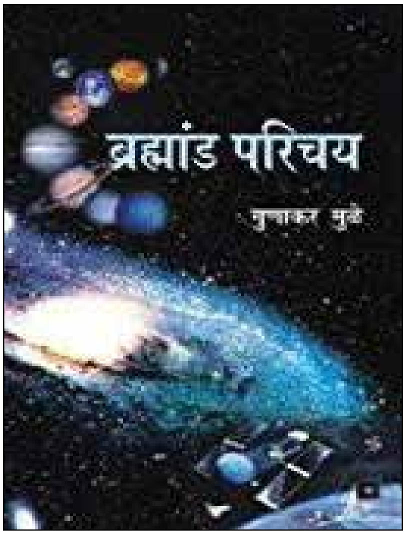


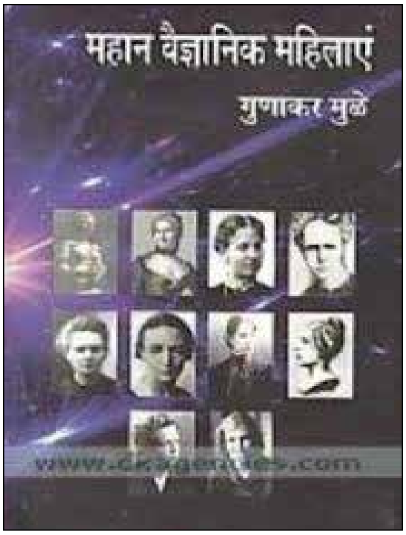
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के नेहरू बाल पुस्तकालय योजना के सलाहकार थे। वे विज्ञान प्रसार, विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार, के दो साल फेलो रहे।

मुले जी स्वभाव से एक छोटे बच्चे जैसे जिज्ञासु थे। उनमें असीम कौतूहल था। वे न केवल विज्ञान के बारे में लिखते थे बल्कि उनकी सोच भी सौ प्रतिशत वैज्ञानिक थी। जो बात वो नहीं जानते थे उसे स्वीकारने में थोड़ा सा भी झिझकते नहीं थे। एक बार 'प्रशांतचंद्र महालनोबीस, भारत में सांख्यिकी आंदोलन के अग्रदूत', के बारे में मेरा लेख पढ़कर मुझे बोले: ''मैं गणित का छात्र होने के बावजूद महालनोबीस के योगदान के बारे में काफी कुछ नहीं जानता था।'' वरिष्ठ विज्ञान लेखक मुहम्मद खलील जी मुले जी के बारे में लिखते हैं: "उनकी बातों से यह पूरा अंदाजा होता था कि उनकी सोच और विचारधारा पूरी तरह वैज्ञानिक थी। एक विशेष बात उनको सुनते हुए यह बार-बार मैंने प्रतीत की कि गुणाकर जी जिस बात को नहीं जानते थे, उसे बिना हिचक मान लेते थे।" ('विज्ञान', मार्च 2010)।

मुले जी ने अपनी शर्तों पर जीवन जिया, उन्होंने अपने आदर्शों के साथ कभी समझौता नहीं किया, इसके बावजूद वे कई वर्षों तक अत्यधिक विपरीत परिस्थितियों का सामना करते रहे। वे एक सच्चे, ईमानदार, स्वावलंबी, स्वाभिमानी और अथक परिश्रमी व्यक्ति थे। वे जात-पात नहीं मानते थे और न ही रीति-रिवाज। वे निष्कपट व्यक्ति थे, अपने विचार व्यक्त करते समय वे समय, स्थान और परिस्थितियों की कभी परवाह नहीं करते थे। वरिष्ठ विज्ञान लेखक प्रेमचंद्र श्रीवास्तव जी लिखते हैं: "मुले जी के चरित्र की एक और विशेषता यह थी कि वे जैसे अंदर से थे, वैसे ही बाहर से। जो उन्हें खराब लगता था उसे बेहिचक कह देते थे। साफगोई और सपाटबाजी के कारण







उन्हें लोग अड़ियल भी कहते थे, पर उन्होंने इसकी कभी परवाह नहीं की।" ('विज्ञान', मार्च 2010)।

मुले जी का किताबों के प्रति विशेष लगाव था। इस संदर्भ में उनकी पत्नी शान्ति मुले जी ने लिखा है: "वे (मूले जी) पुस्तकों के भूखे थे। पुस्तक खरीदने के लिए वह भूखे रहना भी कबूल करते। कहीं जाते नहीं थे बहुत जरूरी हुआ तो पार्टी में किसी के घर जाते। पुस्तक मेला में दो-तीन चक्कर अवश्य लगाते। किताबों के लिए पैसे जोड़कर रखते।" ('विज्ञान', मार्च 2010)। उनके निजी पुस्तकालय में लगभग 8000 पुस्तकें थीं। उनकी पत्नी के अनुसार मुले जी ने आखिरी किताब अपनी मृत्यु के 4 दिन पहले मंगाई थी। यह पुस्तक थी डी.डी. कौशाम्बी की जीवनी। वे आखिरी खरीदी हुई किताब पढ़ नहीं पाए, केवल उसके पन्नों को देख पाए।

जीवन के अंतिम क्षण तक वे अपने विज्ञान लेखन के बारे में सोचते रहे। अंतिम दिनों में अपनी पत्नी शान्ति देवी को कहते थे: "मैं अभी मरना नहीं चाहता हूं। मुझे बहुत काम करना है। किताबें पूरी करनी हैं।" मगर ऐसा नहीं हुआ। 16 अक्तूबर 2009 को दिल्ली में उनका निधन हो गया।

उन्हें हिंदी विज्ञान लेखन में महत्त्वपूर्ण योगदान के लिए कई पुरस्कार मिले, जिनमें से कुछ हैं: साहित्य सम्मान पुरस्कार, दिल्ली हिंदी अकादमी, आत्माराम पुरस्कार, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, जननायक कर्पूरी ठाकुर पुरस्कार, बिहार सरकार, 'आकाश दर्शन' एवं 'संसार के महान गणितज्ञ' ग्रंथों के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार, के प्रथम मेघनाद साहा पुरस्कार एवं राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद, विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार का लोकप्रिय विज्ञान लेखन के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार। उन्हें मराठी विज्ञान परिषद, मुंबई द्वारा श्रेष्ठ विज्ञान लेखन के लिए सम्मानित किया गया। विज्ञान परिषद प्रयाग ने 'विज्ञान' पत्रिका का मार्च 2010 अंक 'गुणाकर मुले स्मृति विशेषांक' के रूप में प्रकाशित किया है।

मुले जी के विज्ञान प्रसार से जुड़े रहने के दौरान मुझे उनसे परिचित होने तथा उनके काम करने के तरीके को नजदीक से देखने का अवसर मिला था। उन्होंने विज्ञान प्रसार की मासिक पत्रिका 'ड्रीम-2047' में प्राचीन भारत के वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी के इतिहास संबंधी 24 लेख लिखे। वे जिस लगन, समर्पण, परिश्रम एवं उत्साह के साथ लिखते थे वो किसी भी युवा विज्ञान लेखक के लिए ईर्ष्या के साथ-साथ प्रेरणा का विषय था। मुझे उनसे बहुत कुछ सीखने को मिला। जैसा कि 'आविष्कार' पत्रिका के संपादक राधाकान्त अंथवाल जी लिखते हैं: "मुले जी जिस विषय पर लिखते थे उस विषय पर खूब चर्चा भी करते थे, जिसका लाभ यह होता था कि लेख में वर्णित बातों के अलावा भी बहुत कुछ जानने-समझने का अवसर मिलता था।"

अंत में प्रोफेसर शिवगोपाल मिश्र जी के शब्दों में मैं भी मुले जी के बारे में कहना चाहूंगा, "उनकी मंद हंसी उनके अंतरतम को व्यक्त करती थी, भले ही वे ऊपर से कठोर प्रतीत होते रहे हों। मेरे लिए तो वे 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' रहे।"

डॉ. सुबोध महंती (पूर्व वैज्ञानिक 'जी' और मानद निदेशक, विज्ञान प्रसार, विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार), डी-410, क्रिसेंट अपार्टमेंट, प्लाट नं. 2, सैक्टर-18, द्वारका, नई दिल्ली-110078
ई-मेल: subodhmahanti@gmail.com

संज्ञा नहीं, एक विशेषण है रामन्

—गुणाकर मुले

चंद्रशेखर वेंकट रामन् द्वारा सागर के नीले रंग के होने के कारण की प्रायोगिक व्याख्या बीसवीं शताब्दी की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण खोजों में गिनी जाती है। उनकी इस महत्त्वपूर्ण खोज को 'रामन् प्रभाव' के नाम से जाना जाता है। इस खोज के लिए उन्हें सन् 1930 में भौतिकी के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। 'रामन् प्रभाव' की महान खोज के बाद उनका नाम एक विशेषण बन गया। रामन् ने 28 फरवरी, 1928 को इस खोज की घोषणा की थी, भारत में सन् 1987 से यह दिन 'राष्ट्रीय विज्ञान दिवस' के रूप में मनाया जाता है। राष्ट्रीय विज्ञान दिवस (28 फरवरी) 1998 के अवसर पर गुणाकर मुले जी का यह विशेष लेख 'आविष्कार' के फरवरी 1998 अंक में प्रकाशित किया गया था।

नोबेल पुरस्कार सन् 1901 से दिए जा रहे हैं। हालांकि ये पुरस्कार प्रदान करने में भी कई तरह की गड़बड़ियां हुई हैं, फिर भी आज संसार का सर्वाधिक प्रतिष्ठित पुरस्कार यही है। केवल दो ही वैज्ञानिकों को यह पुरस्कार दो बार मिला है। मॉरी क्यूरी को पहली बार सन् 1903 में भौतिकी का नोबेल पुरस्कार प्येअर क्यूरी और आंत्वान बेक्रेल के साथ मिला। दूसरी बार सन् 1911 में रसायन का नोबेल पुरस्कार अकेली मॉरी क्यूरी को मिला। दो बार नोबेल पुरस्कार पाने वाले दूसरे वैज्ञानिक हैं कार्ल लायनस पॉलिंग, जिन्हें रसायन का नोबेल पुरस्कार सन् 1954 में दिया गया और नोबेल शांति-पुरस्कार सन् 1962 में।



चंद्रशेखर वेंकट रामन्

एक ही परिवार के दो निकट संबंधियों को नोबेल पुरस्कार दिए जाने के उदाहरण भी थोड़े ही हैं। जोजेफ जॉन टॉमसन को सन् 1906 में भौतिकी का नोबेल पुरस्कार दिया गया और उनके पुत्र जॉर्ज टॉमसन को भौतिकी का नोबेल पुरस्कार सन् 1937 में प्रदान किया गया। विल्यम हेन्री ब्रॅग और उनके पुत्र विल्यम लारेंस ब्रॅग को सन् 1915 में भौतिकी का नोबेल पुरस्कार एक साथ मिला। मॉरी क्यूरी की बेटी ईरेन को पति फ्रेदेरिक झॉल्यो के साथ सन् 1935 में रसायन का नोबेल पुरस्कार मिला। कोरी-दम्पति को सन् 1947 का शरीर क्रिया-विज्ञान व चिकित्सा का नोबेल पुरस्कार एक साथ मिला।

एक भारतीय परिवार के दो निकट संबंधियों ने भी संसार का यह सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार सम्मान अर्जित किया है। चंद्रशेखर वेंकट रामन् को भौतिकी का नोबेल पुरस्कार सन् 1930 में मिला। रामन् के भतीजे सुब्रह्मण्यन् चंद्रशेखर को भौतिकी का नोबेल पुरस्कार सन् 1983 में मिला।

मगर बात केवल नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने की ही नहीं है। रामन् व चंद्रशेखर के परिवार ने दो पीढ़ियों के दौरान ही कई वैज्ञानिक पैदा किए। रामन् के छोटे भाई डॉ. रामस्वामी ने एक मौसम-विज्ञानी के रूप में ख्याति अर्जित की। रामन् के देहावसान के बाद उनके पुत्र राधाकृष्णन् बेंगलुरु की 'रामन् रिसर्च इंस्टिट्यूट' के निदेशक बने। सुब्रह्मण्यन् चंद्रशेखर के तीनों छोटे भाई भी विज्ञानकर्मी ही बने।

यह 'बौद्धिक चमत्कार' कैसे संभव हुआ? जानना जरूरी है; तभी हम रामन् के व्यक्तित्व व कृतित्व को ठीक से समझ सकते हैं। यह भी समझना उपयोगी होगा कि इस चमत्कार में आनुवंशिकी का योगदान कितना हो सकता है और सामाजिक-पारिवारिक परिस्थितियों का कितना। यह अध्ययन भी बड़ा दिलचस्प होगा कि नोबेल पुरस्कार विजेता चाचा-भतीजे एक-दूसरे के बारे में क्या विचार रखते थे। यह अध्ययन भारतीय विज्ञान की वर्तमान दशा व दिशा पर भी काफी रोशनी डालता है।

रामन् के परिवार के अय्यमुथियन् नामक एक पूर्व-पुरुष 1720 ई. के

आसपास तंजावूर के नजदीक के वैगलथूर गांव के निवासी थे। वे व्यापार करने मलाबार की ओर गए। वहां से कुछ पैसा कमाकर लौटे, तो तंजावूर जिले के मानगुडी गांव में उन्होंने जमीन खरीद ली। उनका और उनके बाद की दो पीढ़ियों का गुजारा खेती पर ही चला।

दक्षिण भारत के ब्राह्मणों के दो प्रमुख पंथ हैं– वैष्णव व शैव। वैष्णव अपने नाम के साथ प्रायः 'अय्यंगार' कुलनाम लिखते हैं और शैव 'अय्यर' लिखते हैं। रामन् का परिवार शैव ब्राह्मणों का था। उनके दादा रामनाथन् (1837-1906) के पास मानगुडी गांव में कोई पंद्रह एकड़ खेती थी। वे खेती व पूजा-पाठ में लगे रहते थे। उनके तमिल और संस्कृत के ज्ञान का उपयोग मुख्यतः धर्मग्रंथ पढ़ने के लिए होता था।

पैतृक धरोहर

मगर अगली पीढ़ी से, रामन् के पिता के समय से, परिवार में एक जबरदस्त क्रांतिकारी मोड़ आया। रामनाथन् ने अपने बेटे चंद्रशेखर को अंग्रेजी शिक्षा दिलाने का निश्चय कर लिया। कुंभकोणम् शहर मानगुडी से ज्यादा दूर नहीं है। रामनाथन् ने कुंभकोणम् में अपने बेटे के निवास की व्यवस्था की और उसे वहां के अंग्रेजी स्कूल में दाखिल कर दिया। बीच-बीच में कुंभकोणम् जाकर वे चावल और दूसरी चीजें बेटे को दे आते थे। तमिल ब्राह्मणों में नाम के पहले पिता का नाम जोड़ने की परंपरा है। इसलिए चंद्रशेखर का पूरा नाम हुआ– रामनाथन् चंद्रशेखर (सुविधा के लिए हम उन्हें संक्षेप में रा.चं. कहेंगे)। इन्हीं के पुत्र रामन् ने और पौत्र सुब्रह्मण्यन् चंद्रशेखर ने नोबेल पुरस्कार प्राप्त किए। दक्षिण में ज्येष्ठ पुत्र को उसके दादा का नाम देने का रिवाज रहा है।

रामन् को मिला नोबेल पुरस्कार प्रकाशिकी (ऑप्टिक्स) के क्षेत्र में किए गए उनके अनुसंधान-कार्य से संबंधित है, इसलिए उनके संदर्भ में ज्यादातर इसी विषय की चर्चा होती है। मगर सच्चाई यह है कि रामन् का आरंभिक शोधकार्य ध्वानिकी (एकाउस्टिक्स) से संबंधित रहा है।

रा.चं. यानी रामनाथन् चंद्रशेखर (1866-1910) कुंभकोणम् के हाईस्कूल में अभी विद्यार्थी ही थे कि पंद्रह साल की आयु में तिरुचिरापल्ली के सप्तऋषि शास्त्रियार की बारह साल की कन्या पार्वती (1869-1916) के साथ उनका विवाह कर दिया गया। गौना दो साल बाद हुआ। सन् 1881 में हाई स्कूल पास करने के बाद रा.चं. ने तिरुचिरापल्ली के कॉलेज में दो साल तक इंटर की पढ़ाई की। उसके बाद बी.ए. के लिए उन्होंने मद्रास (चेन्नई) के क्रिस्टियन कॉलेज में प्रवेश लिया।

पाठ्-पुस्तकों की बजाए अंग्रेजी साहित्य और दर्शनशास्त्र की पुस्तकें पढ़ने में रा.चं. की अधिक दिलचस्पी थी। उन्होंने अमेरिकी विचारक कर्नल इंगरसोल (1833-99) के स्वतंत्र-चिंतन



रा.चं. यानी रामनाथन् चंद्रशेखर
(1866-1910)



रामन् की माता पार्वती चंद्रशेखर
(1869-1916)

से संबंधित और हर्बर्ट स्पेंसर (1820-1903) की क्रमविकास से संबंधित पुस्तकें पढ़ीं। परिणामतः एक आस्तिक परिवार में पैदा हुए रा.चं. अंततः अज्ञेयवादी बन गए, यानी मानने लगे कि मनुष्य के लिए ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करना असंभव है! वे थिओसोफिकल सोसाइटी की संस्थापिका मैडम ब्लावात्स्की (1831-91) की भी खिल्ली उड़ाने लगे। इस तरह की पाठ्येतर गतिविधियों में अधिक समय खर्च करने का नतीजा यह हुआ कि वे बी.ए. पास नहीं कर सके, तमिल के पेपर में फेल हो गए!

आइंस्टाइन ने सन् 1953 में लिखा था: "रामन् पहले वैज्ञानिक हैं जिन्होंने स्पष्ट पहचाना और प्रमाणित किया कि द्रव्य के भीतर प्रकाश के फोटान-कण की ऊर्जा में आंशिक परिवर्तन हो सकता है। मुझे आज भी स्मरण है कि इस खोज ने हम सबको बड़ा प्रभावित किया था।"

उसके बाद रा.चं. ने अपनी पत्नी के गांव में एक स्कूल खोला, मगर वह ज्यादा दिन नहीं चला। फिर वे तिरुचिरापल्ली के स्कूल में दस रुपए प्रतिमाह के वेतन पर अध्यापक नियुक्त

हुए। बड़ी मुश्किल से परिवार का गुजारा चलता था। उसी दौरान रा.चं. के दो बेटों का मातृग्राम तिरुवनकोइल में जनम हुआ— सुब्रह्मण्यन् अय्यर (नोबेल पुरस्कार-विजेता डॉ. चंद्रशेखर के पिता) का सन् 1885 में और वेंकटरामन् (जो बाद में रामन् के नाम से विख्यात हुए) का 7 नवम्बर, 1988 को। एक बार किसी ने रामन् से पूछा थाः ''आप क्या मुंह में चांदी का चम्मच लेकर पैदा हुए थे?'' तो उन्होंने जवाब दिया थाः ''मैं मुंह में किसी तरह का चम्मच लेकर पैदा नहीं हुआ था, क्योंकि मेरे जन्म के समय मेरे पिता का वेतन केवल दस रुपए मासिक था।''

परिवार की भारी जिम्मेदारी के बावजूद रा.चं. ने अपनी पढ़ाई जारी रखी। खंड-खंड में परीक्षा देकर अंततः सन् 1891 में उन्होंने बी.ए. की डिग्री हासिल की। उसके बाद अगले वर्ष विशाखापट्नम् के श्रीमती अंकिथम् वेंकट नरसिंहराव कॉलेज में रा.चं. की प्रिंसिपल के सहायक के रूप में नियुक्ति हुई। वे पत्नी, छोटी बच्ची और चार साल के वेंकटरामन् को लेकर विशाखापट्नम् पहुंचे; उनका बड़ा बेटा अपने दादा की देखभाल करने पीछे रह गया।

विशाखापट्नम् के कॉलेज में रा. चं. भौतिकी, गणित व भूगोल पढ़ाते थे। वे खेलकूद के कार्यक्रमों में भी भाग लेते थे। संगीत में, विशेषकर वीणा व वायलिन जैसे वाद्य-संगीत में, उनकी गहरी रुचि थी। विशाखापट्नम् में अय्यर परिवार का निवास समुद्र के नजदीक था। इसलिए सूर्योदय की लाली, समुद्र की नीलिमा और लहरों के मनोरम नजारे उनके घर से दिखाई देते थे। ऐसे वातावरण में रहकर भौतिकी, संगीत-वाद्य, रंग और प्रकाश के अध्ययन के प्रति रामन् का गहरा लगाव हो गया, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

रा.चं. एक-एक करके भौतिकी, गणित और अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. करना चाहते थे; इसके लिए वे तैयारी करते रहे। परंतु अध्यापन-कार्य और परिवार की जिम्मेदारियों के कारण उनकी यह मनोकामना पूरी न हो सकी। मगर इसका एक बड़ा लाभ यह हुआ कि उनके घर विभिन्न विषयों की बढ़िया पुस्तकों का एक अच्छा संग्रह तैयार हो गया। रा.चं. के इस निजी पुस्तक संग्रह ने उनके पुत्रों और पौत्रों के आरंभिक बौद्धिक विकास में बड़े महत्त्व की भूमिका अदा की है। रा.चं. गणित और भौतिकी के अध्यापक थे, उनके घर में इन विषयों की अच्छी पुस्तकें उपलब्ध थीं, इसीलिए शुरू से रामन् का भौतिकी के प्रति और चंद्रशेखर का गणित के प्रति गहरा लगाव हुआ।

रा.चं. के दोनों बेटों (सुब्रह्मण्यन् और वेंकटरामन्) की आरंभिक पढ़ाई पिता की देखरेख में ही हुई। सात साल के होने तक उन्होंने घर पर ही तमिल, गणित व अंग्रेजी की पढ़ाई की। आगे दोनों की इंटर तक की पढ़ाई विशाखापट्नम् के कॉलेज में हुई।



सुब्रहमण्यन् चंद्रशेखर
(1910-1995)

कॉलेज में उनके पिता ही उनके उप-प्राचार्य और कुछ समय तक अध्यापक रहे। रा.चं. केवल पढ़ाते ही नहीं थे, स्वयं पढ़ने के लिए भी अपने बच्चों को प्रेरित करते थे।

एक परंपरावादी, कर्मकांडी और आस्तिक परिवार में पैदा होने पर भी रा.चं. अज्ञेयवादी बन गए थे, यह हम पीछे बता चुके हैं। उन्होंने अपने बच्चों को भी स्वतंत्र-चिंतन की पूरी छूट दे रखी थी। यही वजह है कि रामन् भी धर्म-कर्म से मुक्त रहे। रामन् का प्रसिद्ध कथन भी है : ''कोई स्वर्ग नहीं है, कोई नरक नहीं है। कोई पुनर्जन्म नहीं है और कोई अवतार नहीं है। परलोक के अस्तित्व में विश्वास करने से ही सच्चा धार्मिक जीवन नहीं बिताया जा सकता। अगर लोग इस लोक को ही सुधारने का बीड़ा उठा लें, तो ज्यादा विवेकपूर्ण और धार्मिक जीवन व्यतीत कर सकते हैं। यही विज्ञान का मानवता को संदेश है।'' रामन् के भतीजे डॉ. सुब्रह्मण्यन् चंद्रशेखर भी अपने को निरीश्वरवादी ही मानते थे।

अतः स्पष्ट है कि एक परिवार में, केवल दो पीढ़ियों के दौरान ही, दो नोबेल पुरस्कार-विजेता और कई प्रतिभाशाली पुरुष पैदा हुए, तो इसका मुख्य श्रेय रा.चं. को है, उनके द्वारा निर्मित वातावरण को है। यह भी एक दिलचस्प बात है कि इसी परिवार में, उसी कालावधि में, पुत्रों की पढ़ाई पर तो बहुत ध्यान दिया गया, मगर पुत्रियों को स्कूल-कॉलेज नहीं भेजा गया! रा.चं. के आठ बच्चों में से दो बेटों और तीन बेटियों की कम उम्र में ही मृत्यु हो गई थी। शेष बचे तीन बेटों में ज्येष्ठ थे चं. सुब्रह्मण्यन् अय्यर (डॉ. चंद्रशेखर के पिता), जिन्होंने बाद में मद्रास के प्रेसीडेंसी कॉलेज में उच्च शिक्षा प्राप्त की और फिर रेलवे-विभाग में बड़े अधिकारी बने। दूसरे बेटे थे

डॉ. रामन्। सबसे छोटे बेटे रामस्वामी, जो सन् 1907 में पैदा हुए थे, बाद में मौसम-विज्ञानी बने। सन् 1910 में, छियालीस साल की आयु में, रा.चं. का देहांत हुआ, मगर वे अपने पीछे एक बहुत बड़ी बौद्धिक विरासत छोड़ गए।

बाल-प्रौढ़ रामन्

वेंकटरामन् (रामन्) बचपन से ही कुशाग्रबुद्धि के थे। यह भी कह सकते हैं कि वे बाल-प्रौढ़ थे। ग्यारह साल की आयु में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा दी और प्रथम स्थान प्राप्त किया। सन् 1902 में उन्होंने मद्रास विश्वविद्यालय से एफ.ए. (इंटर) की परीक्षा प्रथम श्रेणी में ऊंचा स्थान पाते हुए उत्तीर्ण की। आगे के अध्ययन के लिए उन्हें छात्रवृत्ति मिली। बी.ए. के अध्ययन के लिए उन्होंने मद्रास के प्रेसीडेंसी कॉलेज में दाखिला लिया; मुख्य विषय था भौतिकी। उस समय वे सिर्फ चौदह साल के थे। बी.ए. में उन्होंने प्रथम स्थान और स्वर्ण-पदक प्राप्त किया। एम.ए. में उन्होंने भौतिकी विषय लिया (उस समय विज्ञान के विषयों के लिए भी बी.ए., एम.ए. की ही उपाधियां दी जाती थीं)। जनवरी 1907 में, 18 वर्ष की आयु में, रामन् एम.ए. की परीक्षा में प्रथम स्थान पाकर उत्तीर्ण हुए। उसी साल वे वित्त-विभाग की एक प्रतियोगिता परीक्षा में बैठे और सफल विद्यार्थियों की सूची में उनका नाम प्रथम रहा। उसी साल उन्होंने अपनी पसंद की पत्नी (लोकसुंदरी) का चुनाव किया। उसी साल जून में वे सपत्नीक कलकत्ता चले गए और वित्त विभाग में उन्होंने सहायक महालेखापाल के रूप में सरकारी काम शुरू कर दिया। उस समय रामन् 19 साल के थे।

अद्‌भुत थी रामन् के आरंभिक जीवन की यह प्रगति, यह रफ्तार। आगे, जैसा कि सर्वविदित है, रामन् ने कलकत्ता की **द इंडियन एसोसिएशन फॉर द कल्टीवेशन ऑफ साइंस** नामक संस्था की प्रयोगशाला में शोधकार्य शुरू कर दिया। फिर सन् 1917 में वे कलकत्ता विश्वविद्यालय में भौतिकी के पालित प्रोफेसर नियुक्त हुए, तो उन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ दी। उसके बाद अध्यापन और शोधकार्य के लिए ही उनका जीवन पूर्णतः समर्पित रहा। सन् 1928 में 'रामन् प्रभाव' की खोज हुई। इस खोज के लिए रामन् को सन् 1930 में भौतिकी का नोबेल पुरस्कार मिला। इस पुरस्कार की पृष्ठभूमि की कुछ अधिक चर्चा हम आगे करेंगे।

चूंकि रामन् को मिला नोबेल पुरस्कार प्रकाशिकी (ऑप्टिक्स) के क्षेत्र में किए गए उनके अनुसंधान-कार्य से संबंधित है, इसलिए उनके संदर्भ में ज्यादातर इसी विषय की चर्चा होती है! मगर सच्चाई यह है कि रामन् का आरंभिक शोधकार्य ध्वानिकी (एकाउस्टिक्स) से संबंधित रहा है। उन्होंने भारतीय संगीत और भारतीय वाद्यों का गहन अध्ययन किया था। वे स्वयं एक कुशल वायलिन-वादक थे। उनकी पत्नी लोकसुंदरी भी एक कुशल वीणा-वादक थीं। संगीत के प्रति रामन् का यह रुझान पैतृक देन थी। रामन् के पिता रा. चं. की संगीत में गहरी पैठ थी। वीणा और वायलिन उनके प्रिय संगीत-वाद्य थे। उन्होंने रामन् की मां को भी संगीत की शिक्षा दी थी।

परंतु भारतीय संगीत-वाद्यों के प्रति रामन् का लगाव केवल रसास्वादन तक ही सीमित नहीं रहा। उन्होंने ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से भारतीय वाद्यों का, विशेषकर तबला और मृदंग का, गहन अध्ययन किया और इसके बारे में नई मान्यताएं प्रस्तुत कीं। यह सारा अनुसंधान-कार्य उन्होंने सन् 1907 में सहायक महालेखापाल का सरकारी पद संभालने के बाद किया। रामन् का यह अनुसंधान-कार्य इतना मौलिक और महत्त्वपूर्ण था कि इसी की महत्ता को पहचानकर सर आशुतोष मुखर्जी ने सन् 1917 में उन्हें कलकत्ता विश्वविद्यालय के नए साइंस कॉलेज में भौतिकी का पालित-प्राध्यापक बनने के लिए आमंत्रित किया था। ध्वनिशास्त्र के इसी अनुसंधान कार्य के लिए लंदन की प्रख्यात रॉयल सोसायटी ने सन् 1924 में रामन् को अपना फैलो चुना था। रामन् पहले विदेशी वैज्ञानिक थे जिनका **संगीत-वाद्य और उनके स्वर** विषयक एक लंबा लेख सन् 1927 में जर्मनी के एक विख्यात विज्ञानकोश **हांडबुख डेर फिजिक** में प्रकाशित हुआ था। तात्पर्य यह कि, प्रकाशिकी के क्षेत्र में खोज कार्य करके 'रामन् प्रभाव' के लिए नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने के पहले ही रामन् संगीत व वाद्ययंत्रों से संबंधित अपने अनुसंधान-कार्य के लिए जागतिक ख्याति अर्जित कर चुके थे।

सुर का संवेदन

संगीत के प्रति रामन् की प्रीति पैतृक थी, पर इस क्षेत्र में मौलिक अनुसंधान कार्य और विज्ञान की सेवा के लिए अपना संपूर्ण जीवन अर्पित कर देने की प्रेरणा रामन् को कहां से मिली?

इस प्रेरणा का स्रोत था एक जर्मन ग्रंथ– **सुर का संवेदन**। अंग्रेजी में **सेंसेशन्स ऑफ टोन** शीर्षक से अनूदित इस ग्रंथ की रचना उन्नीसवीं सदी के महान जर्मन वैज्ञानिक हेरमान फोन हेल्महोल्ट्ज (1821-1894 ई.) ने सन् 1862 में की थी। रामन् के ही शब्दों में पढ़िए कि हेल्महोल्ट्ज की इस कृति ने उन्हें विद्यार्थी-जीवन में कितना अधिक प्रभावित किया था:

"मैं हेरमान फोन हेल्महोल्ट्ज को आधुनिक जगत की सर्वश्रेष्ठ विभूति मानता हूं। जब मैं उनके ज्ञान-भंडार की गहराई और उनकी वैज्ञानिक दृष्टि की स्पष्टता एवं गहनता पर गौर करता

रामन् : संक्षिप्त जीवन-क्रम

जन्म	:	7 नवम्बर 1888
1902	:	मद्रास के प्रेसीडेंसी कॉलेज में बी.ए. में दाखिला।
1907	:	एम.ए. (भौतिकी) में प्रथम स्थान। विवाह। वित्त विभाग में सहायक महालेखापाल नियुक्त होकर कलकत्ता गए।
1917	:	नौकरी छोड़ी। कलकत्ता विश्वविद्यालय में पालित-प्राध्यापक नियुक्त हुए। 'इंडियन असोसिएशन फॉर द कल्टिवेशन ऑफ साइंस' के सचिव।
1921	:	यूरोप-यात्रा।
1924	:	यूरोप व अमेरिका की यात्रा। रॉयल सोसायटी (लंदन) के फैलो निर्वाचित हुए।
1926	:	इंडियन जर्नल ऑफ साइंस (संपादक : रामन्) की स्थापना।
1928	:	'रामन् प्रभाव' की खोज।
1929	:	ब्रिटिश शासन द्वारा 'नाइट' (सर) की उपाधि
1930	:	भौतिकी का नोबेल पुरस्कार।
1933-37	:	इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस (बेंगलुरु) के निदेशक। उसके बाद रामन् वहां प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष बने रहे।
1934	:	'इंडियन अकादमी ऑफ साइंसेज' की स्थापना।
1948	:	'इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस' से अवकाश ग्रहण किया। प्रथम 'राष्ट्रीय प्राध्यापक' नियुक्त हुए। बेंगलुरु में 'रामन् रिसर्च इंस्टिट्यूट' की स्थापना।
1954	:	'भारत रत्न' की उपाधि।
1957	:	सोवियत संघ का लेनिन पुरस्कार।
मृत्यु	:	21 नवम्बर 1970

हूं, तो वे मुझे अन्य सभी वैज्ञानिकों से, यहां तक कि आइजेक न्यूटन से भी, श्रेष्ठ प्रतीत होते हैं। उन्हें ठीक ही उन्नीसवीं सदी की महान प्रतिभा माना जाता है। यह मेरा सौभाग्य था कि जब मैं अभी कॉलेज का विद्यार्थी ही था, मुझे उनकी कृति **सुर का संवेदन** का अंग्रेजी अनुवाद पढ़ने का अवसर मिला (बहुत संभव है कि यह पुस्तक रामन् के संगीत-प्रेमी पिता के संग्रह में मौजूद रही हो)। जैसा कि सर्वविदित है, हेल्महोल्ट्ज की यह सर्वश्रेष्ठ कृति थी। इसमें संगीत और संगीत-वाद्यों का किया गया विवेचन, न केवल ज्ञान की दृष्टि से गहन है, बल्कि भाषा की दृष्टि से भी सुपरस्ट है। मैंने स्वयं यह पुस्तक हासिल की और बड़ी लगन से इसका अध्ययन किया।

"यदि मैं कहूं कि इस ग्रंथ ने मेरे बौद्धिक दृष्टिकोण को बेहद प्रभावित किया, तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस ग्रंथ को पढ़कर मैं पहली बार समझ पाया कि वैज्ञानिक अनुसंधान वस्तुतः क्या होता है और इसे किस तरह करना चाहिए। इस ग्रंथ से मैंने कई प्रकार की वैज्ञानिक समस्याओं का भी चयन किया, जिन्होंने मुझे आगे कई सालों तक व्यस्त रखा।"

भारत पर अंग्रेजों का लंबे समय तक शासन रहा है और यूरोप के आधुनिक विज्ञान का परिचय हम प्रमुखतः अंग्रेजी भाषा के माध्यम से



हेरमान फोन हेल्महोल्ट्ज
(1821-1894)

ही प्राप्त करते आ रहे हैं, इसलिए यह स्वाभाविक है कि अंग्रेजी भाषी वैज्ञानिकों के बारे में हम अपेक्षाकृत ज्यादा जानते हैं। यूरोप के गैर-अंग्रेजी वैज्ञानिकों के बारे में हमारी जानकारी प्रायः अधूरी ही रह जाती है। विज्ञान के हमारे कितने विद्यार्थियों और अध्यापकों को जर्मन वैज्ञानिक हेल्महोल्ट्ज के महान कृतित्त्व की जानकारी है? बहुतों को शायद इतना ही पता होगा कि रेडियो-तरंगों के आविष्कारक जर्मन वैज्ञानिक हेनरिक हर्ट्स (1857-1894 ई.) हेल्महोल्ट्ज के शिष्य थे। ऐसी स्थिति में रामन् का हेल्महोल्ट्ज को न्यूटन से भी श्रेष्ठ वैज्ञानिक मानना बहुतों को अतिशयोक्तिपूर्ण भी लग सकता है।

मगर रामन् के कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। पढ़िए हेल्महोट्ज के समकालीन महान आंग्ल-गणितज्ञ विलियम किंगडोन क्लिफोर्ड (1845-79 ई.) द्वारा प्रस्तुत उनका मूल्यांकन :

"हेल्महोल्ट्ज ने सर्वप्रथम शरीर-विज्ञान का अध्ययन आरंभ किया। उन्होंने आंख और कान का विच्छेदन करके जानने का प्रयास किया कि ये

अवयव किस प्रकार काम करते हैं और इनकी रचना ठीक किस प्रकार की है। परंतु जब उन्हें पता चला कि प्रकाश और ध्वनि के स्वरूप को समझे बिना आंख व कान की कार्यविधि को ठीक से समझ पाना असंभव है, तब उन्होंने भौतिकी का अध्ययन आरंभ कर दिया। भौतिकी का अध्ययन आरंभ करने के पहले ही वे इस सदी के सर्वश्रेष्ठ शरीर-विज्ञानी माने गए थे। और, अब उन्हें इस सदी का सर्वश्रेष्ठ भौतिकवेत्ता माना जाता है। फिर उन्हें पता चला कि गणित की गहरी जानकारी के बिना भौतिकी को ठीक से समझ पाना असंभव है। इसलिए उन्होंने गणित का गहन अध्ययन किया और अब उन्हें इस सदी का एक सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ माना जाता है।''

हेल्महोल्ट्ज उन्नीसवीं सदी के यूरोपीय विज्ञान के शलाका-पुरुष थे। उनके प्रयासों से जर्मन विज्ञान ने यूरोप में जो उच्च हैसियत हासिल की थी वह दूसरे महायुद्ध के आरंभ तक कायम रही। दृष्टि और श्रवण-क्रिया से संबंधित हेल्महोल्ट्ज की मौलिक गवेषणाओं को आज भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। रामन् की युवावस्था में हेल्महोल्ट्ज का केवल **सुर का संवेदन** ग्रंथ ही अंग्रेजी अनुवाद में उपलब्ध था। उनके दूसरे ग्रंथ **दृष्टि की दैहिकी** (द फिजिआलॉजी ऑफ विजन) का तब तक अंग्रेजी में अनुवाद नहीं हुआ था। उस समय उस ग्रंथ को न पढ़ पाने का रामन् को बड़ा अफसोस रहा।

हेल्महोल्ट्ज की भौतिकी के क्षेत्र की गवेषणाएं भी बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। सन् 1847 में **एरहाल्टुंग डेर क्राफ्ट** शीर्षक से एक पुस्तिका प्रकाशित हुई। इसमें उन्होंने ऊर्जा की अविनाशिता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। भौतिकी के इस आधारभूत सिद्धांत के अनुसार, विश्व की समस्त ऊर्जा की मात्रा, अपने विविध रूपांतरणों में, स्थिर बनी रहती है। गणित के क्षेत्र की भी हेल्महोल्ट्ज की गवेषणाएं इतनी महत्त्वपूर्ण हैं कि लोवाचेवस्की, वोल्याई और रीमान की तरह उन्हें भी अ-युक्लिडीय ज्यामिति का एक संस्थापक माना जाता है। हेल्महोल्ट्ज ने हेनरिक हर्ट्स जैसे अपने अनेक शिष्यों को विज्ञान के क्षेत्र में शोधकार्य करने के लिए प्रेरित किया। हेल्महोल्ट्ज और रामन् के बीच का दिक्काल का अंतर द्रोणाचार्य और एकलव्य के संबंध के रूप में फलित हुआ।

प्राचीन भारत के सांस्कृतिक जीवन में संगीत-वाद्यों ने महान भूमिका अदा की, किंतु हमारे यहां इन वाद्यों के जो विवरण उपलब्ध हैं वे इनके प्रयोगों तक ही सीमित हैं। रामन् को लगा कि भारतीय संगीत-वाद्यों की विशेषताओं को समझने के लिए इनका वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करना जरूरी है। रामन् को यह प्रेरणा हेल्महोल्ट्ज की कृति से मिली।

रामन् ने ध्वानिकी का अपना अध्ययन तंत्री-वाद्यों से शुरू किया। उन्होंने वीणा और तानपुरा-जैसे प्राचीन भारतीय तंत्री-वाद्यों में स्थापित किए जाने वाले वक्र मेरु (घोड़ी) की महत्ता को स्पष्ट किया। फिर उन्होंने वायलिन और सेलो-जैसे तंत्री-वाद्यों के बारे में भी गणितीय सिद्धांत प्रस्तुत किए। वायलिन की ध्वानिकी से संबंधित रामन् की गवेषणाएं इतनी महत्त्वपूर्ण हैं कि केवल इसी विषय के अध्ययन के लिए समर्पित अमेरिका की **'काटगुट एकाउस्टिकल सोसाइटी'** ने उन्हें अपना माननीय सदस्य चुना था।

रामन् के पहले यही समझा जाता था कि तबला और मृदंग-जैसे भारतीय आघात-वाद्य जो अधिस्वर पैदा करते हैं वे संनादी नहीं होते, इसलिए ये एक प्रकार से शोर पैदा करने वाले वाद्य हैं। मगर रामन् ने सिद्ध कर दिखाया कि भारतीय तालवाद्य, अपनी एक विशेषता के कारण, संगीतमय ध्वनि पैदा करने में समर्थ हैं।

ये संगीतमय अधिस्वर तबला और मृदंग-जैसे वाद्यों के चमड़ों पर चिपकाई जाने वाली लेई के कारण पैदा होते हैं। रामन् की ध्वानिकी के क्षेत्र की इन गवेषणाओं को बड़ी ख्याति मिली थी। इसलिए प्रसिद्ध जर्मन विज्ञान-कोश **हांडबुख डेर फिजिक** के लिए **संगीत-वाद्य और उनके स्वर** विषय पर एक विस्तृत लेख लिखने का उनसे अनुरोध किया गया था। उस समय (सन् 1927) रामन् ध्वानिकी को छोड़कर प्रकाशिकी के अध्ययन में जुटे हुए थे। इसलिए उन्होंने सूर्योदय से पहले के घंटों में अतिरिक्त समय निकालकर कुछ दिनों में लेख तैयार कर लिया। रामन् का अंग्रेजी में लिखा गया वह लेख जर्मन में अनूदित होकर प्रकाशित हुआ।

रामन् के जर्मन संबंध

रामन् का जर्मन वैज्ञानिकों के प्रति गहरा अनुराग था, तो जर्मन वैज्ञानिकों से भी उन्हें अपार स्नेह और सम्मान मिला। घटना सन् 1928 की है। उस साल 28 फरवरी को 'रामन प्रभाव' की खोज होने से कुछ दिन पहले की बात है। रामन् को सूचना मिली कि प्रख्यात जर्मन भौतिकविद् आर्नोल्ड सोम्मेरफेल्ड (1868-1951) भारत से होते हुए पूर्व के रास्ते अमेरिका जा रहे हैं। रामन् ने 11 फरवरी, 1928 को ('रामन् प्रभाव' की खोज की घोषणा के केवल 17 दिन पहले) सोम्मेरफेल्ड को एक तार भेजकर कलकत्ता विश्वविद्यालय में भाषण देने के लिए आमंत्रित किया।

सोम्मेरफेल्ड बेंगलुरु पहुंच कर बीमार पड़ गए, इसलिए अक्तूबर के आरंभ में ही कलकत्ता पहुंच पाए। सोम्मेरफेल्ड पहले विदेशी वैज्ञानिक थे

जिनके सामने रामन् ने अपनी महान खोज का प्रदर्शन किया। उस समय यूरोप में कुछ ऐसे भी वैज्ञानिक थे जो 'रामन् प्रभाव' के परिणामों में विश्वास नहीं कर पा रहे थे। मगर सोम्मेरफेल्ड 'रामन् प्रभाव' के प्रयोग को प्रत्यक्ष देखकर बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने न केवल रामन् की इस खोज की स्तुति की, बल्कि नोबेल पुरस्कार के लिए रामन् के नाम का प्रस्ताव भी भेज दिया। बाद में और भी कुछ वैज्ञानिकों ने नोबेल पुरस्कार के लिए रामन् का नाम प्रस्तावित किया। (सोम्मेरफेल्ड की इसी भारत-यात्रा के दौरान मद्रास में सुब्रह्मण्यन् चंद्रशेखर और कलकत्ता में डॉ. क. श्री. कृष्णन उनके संपर्क में आए थे और उनसे बहुत प्रभावित हुए थे)।

उसी दौरान जर्मनी के दो और वैज्ञानिकों ने कलकत्ता की 'इंडियन असोसिएशन' की रामन् की प्रयोगशाला को भेंट दी–सन् 1928 में फोन कारमान ने और सन् 1929 में हाइजेनवर्ग ने। वस्तुतः आरंभ में 'रामन् प्रभाव' की खोज को सबसे अधिक सम्मान जर्मन वैज्ञानिकों से ही मिला। आइंस्टाइन ने सन् 1953 में लिखा था : ''रामन् पहले वैज्ञानिक हैं जिन्होंने स्पष्ट पहचाना और प्रमाणित किया कि द्रव्य के भीतर प्रकाश के फोटॉन-कण की ऊर्जा में आंशिक परिवर्तन हो सकता है। मुझे आज भी स्मरण है कि इस खोज ने हम सबको बड़ा प्रभावित किया था।''

रामन् के जर्मन संबंधों के संदर्भ में यह भी एक उल्लेखनीय घटना है कि उनकी महान खोज को 'रामन् प्रभाव' का नाम सर्वप्रथम एक जर्मन वैज्ञानिक ने दिया था। बर्लिन विश्वविद्यालय के प्रो. पीटर प्रिंगशाइम ने अगस्त 1928 में, खोज के केवल पांच महीने बाद, जर्मन पत्रिका 'नातूरविस्सेनशाफ्टेन' में रामन् की खोज के बारे में एक विस्तृत निबंध प्रकाशित किया। उसमें उन्होंने लिखा कि, ''रामन् की खोज एक नितांत नई घटना है, इसलिए यह उचित है कि इसे 'रामन प्रभाव' (डेर रामन् इफेक्ट) का और इससे संबंधित नई रेखाओं के स्पैक्ट्रम को 'रामन् स्पैक्ट्रम' का नाम दिया जाए। निस्संदेह, रामन् की इस खोज ने स्पेक्ट्रोस्कोपी के एक नितांत नए और विस्तृत क्षेत्र का उद्‌घाटन किया है।'' प्रो. प्रिंगशाइम के लेख के प्रकाशन के बाद ही वैज्ञाानिक जगत में 'रामन् प्रभाव' का व्यापक रूप से स्वागत हुआ और इस खोज की चतुर्दिक चर्चा हुई।

'रामन् प्रभाव' की खोज की पृष्ठभूमि

'रामन् प्रभाव' की खोज की पृष्ठभूमि को ठीक से जान लेना जरूरी है। सन् 1921 में रामन् जहाज से यूरोप-यात्रा पर जा रहे थे। वे भूमध्यसागर के पानी के अद्‌भुत नीले रंग को देखकर बड़े प्रभावित हुए। तब तक यही समझा जाता था कि आकाश के नीले रंग को प्रतिबिंबित करने के फलस्वरूप सागर का पानी नीला दिखाई देता है। रामन् ने इस मान्यता को अस्वीकार करके एक नया विचार प्रस्तुत किया– सागर के पानी का नीला रंग जल के अणुओं द्वारा प्रकाश-किरणों के प्रकीर्णन यानी बिखराव (स्कैटरिंग) के कारण होता है। कलकत्ता लौटकर रामन् विभिन्न पदार्थों में होने वाले प्रकाश-किरणों के प्रकीर्णन के अध्ययन में जुट गए। उसी दौरान अमेरिकी भौतिकवेत्ता आर्थर कॉम्पटन (1892-1962 ई.) ने खोज की कि इलेक्ट्रॉनों द्वारा प्रकीर्णित होने पर एक्स-किरणों की आवृत्ति बदल जाती है। इस खोज के लिए कॉम्पटन को सन् 1927 में भौतिकी का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया था।

चूंकि प्रकाश-किरणें भी अनेक गुणों में एक्स-किरणों के समान ही होती हैं, इसलिए कई भौतिकविदों ने सोचा कि अणुओं द्वारा प्रकीर्णित होने पर प्रकाश-किरणों की आवृत्ति में भी अंतर आ जाना चाहिए। जर्मन भौतिकवेत्ता एडोल्फ स्मेकेल (1895-1959) ने इस संभावना का सैद्धांतिक विवेचन भी प्रस्तुत किया था (इसीलिए डॉ. मेघनाद साहा ने सन् 1928 में अपने एक भाषण में कहा था कि 'रामन् प्रभाव' स्मेकेल के पूर्वानुमान की पुष्टि के अलावा और कुछ नहीं है)। जर्मनी के ही दो अन्य प्रसिद्ध वैज्ञानिकों – क्रेमर्स और हाइसेनबर्ग ने भी प्रकाश-किरणों के आणविक प्रकीर्णन के बारे में ऐसे ही निष्कर्ष प्राप्त किए थे।

मगर सैद्धांतिक संभावना को प्रयोग द्वारा सिद्ध करना – प्रकाश-किरणों के प्रकीर्णन के फलस्वरूप आवृत्ति में होने वाले परिवर्तनों को प्रायोगिक तौर पर मापना– आसान काम नहीं था। कई वैज्ञानिकों ने इस दिशा में प्रयोग शुरू किए, मगर बाद में बंद कर दिए। पर रामन् डटे रहे। वे और उनके सहयोगी तरह-तरह के पदार्थों पर और फिल्टरों को अदल-बदल कर प्रयोग करते रहे। अंततः फरवरी 1928 में उन्होंने प्रायोगिक तौर पर सिद्ध कर दिया कि प्रकाश के प्रकीर्णन से उसकी आवृत्ति में अवश्य ही परिवर्तन हो जाता है। इसी को 'रामन् प्रभाव' का नाम मिला। बदली आवृत्ति वाली विशिष्ट किरणों (रामन् स्पेक्ट्रम) के अध्ययन से पदार्थ की आणविक संरचना के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है।

प्रकाश के आणविक प्रकीर्णन संबंधी प्रयोगों में रामन् को कई तरुण भारतीय वैज्ञानिकों का सहयोग मिला। आरंभिक दौर में डॉ. के. आर. रामनाथन् का महत्त्वपूर्ण सहयोग मिला, तो आखिरी दौर में डॉ. क. श्री. कृष्णन् का। कृष्णन् ने जनवरी से अप्रैल 1928 तक के घटना-क्रम की डायरी लिखी है। उस

डॉ. क. श्रीनिवास कृष्णन्



डॉ. क. श्रीनिवास कृष्णन्
(1898-1961)

कर्य्यमाणिक्यम् श्रीनिवास कृष्णन् का जन्म तमिलनाडु के रामनाडु जिले के वत्रप गांव में 4 दिसंबर 1898 में हुआ था। उनके ब्राह्मण-किसान पिता तमिल और संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। कृष्णन का भी तमिल व संस्कृत पर अच्छा अधिकार था। बचपन में ही उन्होंने तालपोथियों को पढ़ना सीखा था।

कृष्णन् की आरंभिक पढ़ाई गांव के स्कूल में हुई। हाई स्कूल की परीक्षा उन्होंने नजदीक के श्री विल्लीपुत्तूर शहर के स्कूल से पास की। फिर वे मदुरा के कॉलेज में दाखिल हुए और आगे की उनकी पढ़ाई मद्रास के क्रिस्टियन कॉलेज में हुई। भौतिकी में उपाधि प्राप्त करने के बाद कृष्णन् उसी कॉलेज में रसायन के प्रयोगशाला-सहायक नियुक्त हुए।

सन् 1920 में कृष्णन कलकत्ता गए। वहां प्रो. रामन् के सहायक बन गए। प्रकाश के आणविक प्रकीर्णन के अध्ययन में कृष्णन का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। सन् 1929 से 1933 तक कृष्णन ढाका विश्वविद्यालय में भौतिकी के रीडर रहे; वहां सत्येन्द्रनाथ बसु उनके सहयोगी थे। वहां कृष्णन् ने मणिभों के चुंबकीय गुणों पर महत्त्वपूर्ण खोजकार्य किया। सन् 1933 में वे कलकत्ता की 'इंडियन असोसिएशन' में भौतिकी के प्रोफेसर नियुक्त हुए। सन् 1937 में रदरफोर्ड के निमंत्रण पर कृष्णन् इंग्लैंड गए– भाषण देने के लिए।

डॉ. मेघनाद साहा इलाहाबाद विश्वविद्यालय छोड़कर कलकत्ता लौटे, तो कृष्णन् उनकी जगह पर वहां सन् 1942 में भौतिकी के प्राध्यापक नियुक्त हुए। कृष्णन् इलाहाबाद में सन् 1947 तक रहे।

देश स्वतंत्र हुआ। देश में राष्ट्रीय प्रयोगशालाएं स्थापित होने लगीं। डॉ. कृष्णन को दिल्ली स्थित राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला का कार्यभार सौंपा गया। जीवन के अंतिम दिनों तक वे इस प्रयोगशाला के निदेशक बने रहे। हृदय-गति रुक जाने से 13 जून, 1961 के दिन डॉ. कृष्णन का देहांत हुआ।

डॉ. कृष्णन् बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। मातृभाषा से उन्हें गहरा लगाव था। वह तमिल भाषा में भी लिखते थे। अपने कुछ शोध-निबंध भी उन्होंने तमिल में लिखे हैं।

सन् 1949 में डॉ. कृष्णन् भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए। सन् 1946 में अंग्रेज सरकार ने उन्हें 'सर' की उपाधि दी। फिर भारत सरकार ने 1954 में उन्हें 'पद्म भूषण' की उपाधि से सम्मानित किया। लंदन की प्रख्यात सोसाइटी ने सन् 1940 में ही डॉ. कृष्णन् को अपना फैलो चुन लिया था।

कृष्णन् और जवाहरलाल नेहरू के संबंध बड़े स्नेहपूर्ण थे। नेहरू ने उनके बारे में कहा था : "डॉ. कृष्णन् के बारे में अद्भुत बात यह है कि वह केवल महान् वैज्ञानिक ही नहीं हैं, बल्कि और भी बहुत कुछ हैं। वह एक सुयोग्य नागरिक हैं। वह एक पूर्ण व्यक्ति हैं, ऐसे व्यक्ति जिसमें कई व्यक्तियों का जमाव एक साथ हो गया है।"

– गु.मु.

डायरी से स्पष्ट होता है कि 'रामन् प्रभाव' की खोज में कृष्णन् का बड़ा योगदान रहा है। आरंभ में कई तरह से रामन् ने भी इसे स्वीकार किया है। 'रामन् प्रभाव' की खोज की सूचना से संबंधित जो पहला पत्र 16 फरवरी, 1928 को विज्ञान की विख्यात पत्रिका 'नेचर' को भेज गया था वह रामन् व कृष्णन् दोनों के नाम से था। कृष्णन् ने भी 16 फरवरी की अपनी डायरी में लिखा है, "आज हमने 'ए न्यू टाइप ऑफ सेकंडरी रेडिएशन' शीर्षक से 'नेचर' को एक नोट भेज दिया है।" यह सूचना केबल के जरिए इंग्लैंड भेजी गई थी। यह सूचना रामन् व कृष्णन के नाम से 31 मार्च 1928 के 'नेचर' के अंक में प्रकाशित हुई। 'नेचर' में 5 मई 1928 को प्रकाशित हुआ विवरण भी दोनों के नाम से ही प्रकाशित हुआ। मगर इन दोनों पत्रों के बीच में 21 अप्रैल 1928 के 'नेचर' के अंक में एक और पत्र प्रकाशित हुआ, और वह अकेले रामन् के नाम से प्रकाशित हुआ! पता चलता है कि रामन् ने यह पत्र कृष्णन् को बिना बताए ही 'नेचर' में प्रकाशनार्थ भेज दिया था। इस पत्र के अलावा, रामन् ने 16 मार्च 1928 को बेंगलुरु में

इस खोज के बारे में जो भाषण दिया था वह भी उनके अकेले के नाम से ही था। यह भाषण और 'नेचर' में छपे दूसरे पत्र के अलावा बाकी सभी पत्रों व प्रकाशनों में, इंडियन जर्नल ऑफ फिजिक्स (1928) में छपे प्रथम विस्तृत लेख में भी, रामन् के साथ कृष्णन का नाम सम्मिलित रहा है। फिर भी, नोबेल पुरस्कार अकेले रामन् को ही मिला!

ऐसा क्यों हुआ, कैसे हुआ—समझना बहुत कठिन है। जहां तक कृष्णन् की बात है, उन्होंने इस बात को लेकर प्रकट रूप से शायद कभी किसी से शिकायत नहीं की। मगर कई भारतीय वैज्ञानिकों की मान्यता रही कि इस खोज में कृष्णन् की बराबरी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, इसलिए इसका सही नाम 'रामन्-कृष्णन् प्रभाव' होना चाहिए था। नोबेल पुरस्कार-विजेता डॉ. सुब्रह्मण्यन् चंद्रशेखर का भी यही मत था कि कृष्णन् के साथ अन्याय हुआ है।

रामन् और चंद्रशेखर—एक ही परिवार के दो नोबेल पुरस्कार-विजेता, परंतु दोनों की कार्य-शैली में और स्वभाव में भी जमीन-आसमान का अंतर था। चंद्रशेखर गणित के प्रेमी थे, एक सिद्धांतकार थे। रामन् भौतिकी के प्रेमी थे, एक कुशल प्रयोगकर्ता थे। चंद्रशेखर अंतर्मुखी थे, तो रामन् बहिर्मुखी। चंद्रशेखर ने शायद ही कभी किसी को मानसिक क्लेश पहुंचाया हो; रामन् के व्यवहार से कई लोग आहत थे, खुद चंद्रशेखर भी। दरअसल, जैसा कि रामन् के जीवनीकार रामशेषन् ने भी लिखा है, रामन् में बहुत ज्यादा अहंभाव था।

रामन् को इसकी काफी कीमत भी चुकानी पड़ी। वे नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने के बाद भारतीय वैज्ञानिक-समुदाय से एक प्रकार से अलग-थलग पड़ गए थे। रामन् दक्षिण भारतीय थे, सर आशुतोष मुखर्जी से उनकी मित्रता थी। रामन् ने कलकत्ता में अपने इर्द-गिर्द कई दक्षिण भारतीय शोध-छात्र जमा कर लिए थे। अपने प्रांत में एक 'मद्रासी' की ऐसी स्थिति को बंगाली भला कैसे सहन कर पाते? बंगाल में रामन् का विरोध शुरू हो गया। इस विरोध में मेघनाद साहा, सत्येंद्रनाथ बसु, प्रफुलचंद्र राय, श्यामा प्रसाद मुखर्जी आदि कई दिग्गज शामिल थे। सबसे अधिक मुखर थे मेघनाद साहा। नतीजा यह हुआ कि रामन् सन् 1933 में कलकत्ता छोड़कर बेंगलुरु चले गए; वहां वे 'इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस' के पहले भारतीय निदेशक नियुक्त हुए। साहा आगे भी रामन् के विरोधी बने रहे।

एक अच्छी योजना असफल रही

बेंगलुरु के 'इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस' की स्थापना सन् 1909 में हुई थी। रामन् जब वहां निदेशक बन कर गए, तब वहां भौतिकी का विभाग नहीं था। रामन् ने संस्थान में भौतिकी विभाग की स्थापना की और इस विषय की एक प्रयोगशाला भी खड़ी कर दी। निदेशक होने के बावजूद वे स्वयं अनुसंधान-कार्य में जुटे रहते थे। भौतिकी के लिए धनराशि और सुविधाएं मिलने लगीं, इसलिए शोध-छात्रों का इस विषय की ओर झुकाव बढ़ना एक स्वाभाविक बात थी। फलतः दूसरे विभागों के प्रमुख और अध्यापक रामन् से नाराज रहने लगे।

उसी दौरान जर्मनी में हिटलर का शासन शुरू हुआ। नाजियों के अत्याचारों से बचने के लिए अनेक यहूदी-जर्मन वैज्ञानिक देश छोड़कर विदेशों में शरण लेने लगे। तब रामन् ने सोचा कि उनमें से कुछ श्रेष्ठ वैज्ञानिकों को बेंगलुरु में बुलाना चाहिए। उस योजना के बारे में रामन् ने अपने विचार व्यक्त किए हैं:

''वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए भारतीय तरुणों का विदेश जाना मुझे पसंद नहीं था। क्योंकि, यदि उन्हें ऐसे भारतीय वातावरण में प्रशिक्षण मिलता है जो भारत में उपलब्ध नहीं है, तो फिर उनका प्रशिक्षण देश के लिए निरुपयोगी बन सकता है। परंतु अपना वतन छोड़ रहे वैज्ञानिक दूसरे देश में शरण मांग रहे हों, तो उन्हें स्थान व सुविधाएं प्रदान करके देश में एक बड़ा वैज्ञानिक आंदोलन खड़ा किया जा सकता है।''

इसी विचार से स्वदेश छोड़ रहे कुछ श्रेष्ठ वैज्ञानिकों को भारत में बुलाने की रामन् ने एक योजना बनाई थी। सबसे पहले उन्होंने तरंग-यांत्रिकी के बुनियादी समीकरणों के आविष्कारक एरविन श्रोडिंगेर (1887-1961) को पत्र लिखा। मगर रामन् का पत्र मिलने के पहले ही वे डब्लिन विश्वविद्यालय का निमंत्रण स्वीकार कर चुके थे। उन्होंने भारत न आ सकने के लिए अफसोस जाहिर किया।

फ्राइबुर्ग विश्वविद्यालय के रसायनज्ञ ग्यॉर्ग फोन हेवेसी (1885-1966) ने रामन् का निमंत्रण स्वीकार कर लिया। क्रिस्टल-रसायन के विशेषज्ञ विक्टोर मोरिट्ज गोल्डश्मिड्ट (1888-1947) ने भी रामन् का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था। मगर आगे जाकर बेंगलुरु में जो परिस्थितियां बनीं उनके कारण ये दोनों ही वैज्ञानिक भारत नहीं आ पाए।

मैक्स बोर्न (1882-1970) रामन् का आमंत्रण स्वीकार करके सन् 1935 के अंतिम दिनों में बेंगलुरु पहुंच गए थे, सपत्नीक। आरंभ में बोर्न को बेंगलुरु के संस्थान में छह महीने तक व्याख्यान देने के लिए बुलाया गया था। बोर्न और उनकी पत्नी का भारत में मन भी रम गया था। तब रामन् ने बोर्न से अनुरोध किया कि वे संस्थान में स्थाई पद स्वीकार कर लें। बोर्न मान गए। इस



रामन् रिसर्च इंस्टिट्यूट, बेंगलुरु

नियुक्ति का अनुमोदन करने के लिए कौंसिल की बैठक बुलाई गई। बैठक में रामन् ने एक श्रेष्ठ वैज्ञानिक, शिक्षक और व्यक्ति के रूप में मैक्स बोर्न का परिचय दिया। तभी एक अनहोनी घटना घटी। बैठक में उपस्थित एक अंग्रेज इंजीनियर ने, जिसका विज्ञान के क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय योगदान नहीं था और केवल शासक-वर्ग का सदस्य होने के नाते उसने संस्थान में हैसियत का पद पाया था, मैक्स बोर्न की निंदा की। उसने बोर्न को स्वदेश से भागा हुआ एक घटिया वैज्ञानिक बताया और कहा कि वे बेंगलुरु के 'इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस' में पद पाने की योग्यता नहीं रखते।

जैसा कि स्वाभाविक था, मैक्स बोर्न इस अपमान को सहन नहीं कर पाए। वे भारत से वापस चले गए। मैक्स बोर्न के साथ किए गए बदसलूक की जानकारी मिलने पर हेवेसी और गोल्डश्मिड्ट ने भी भारत आने का अपना इरादा बदल दिया। इस प्रकार रामन् की योजना असफल रही। इस योजना में भारतीय वैज्ञानिकों ने भी रामन् को सहयोग नहीं दिया। उन्हें डर था कि यूरोप के वैज्ञानिकों के सामने वे फीके पड़ जाएंगे।

रामन् की वह योजना देश के लिए बड़ी हितकर थी। उन्होंने योग्य वैज्ञानिकों को आमंत्रित किया था। यह इसी से स्पष्ट है कि हेवेसी को सन् 1943 में रसायन का नोबेल पुरस्कार मिला और मैक्स बोर्न को सन् 1954 में भौतिकी का।

जो बात भारत में संभव नहीं हुई वह अमेरिका में हुई। अमेरिका ने यूरोप के अनेक निर्वासित वैज्ञानिकों का अपने यहां स्वागत किया, उन्हें सुविधाएं प्रदान कीं। फलतः वहां विज्ञान के विकास का एक नया युग शुरू हुआ।

रामन् को सन् 1937 में बेंगलुरु के 'इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस' के निदेशक का पद छोड़ देना पड़ा। परंतु वे सन् 1948 तक विभागाध्यक्ष और प्राध्यापक बने रहे। उस दौरान वे अपने लिए बेंगलुरु में ही एक स्वतंत्र विज्ञान-संस्थान की स्थापना के बारे में सोचते रहे, उनके लिए साधन जुटाते रहे। अंत में बेंगलुरु में सन् 1948 में 'रामन् रिसर्च इंस्टिट्यूट' का भवन बनकर तैयार हो गया, तो वे वहां चले गए। रामन् ने यह संस्थान प्रमुखतः स्वसाधनों से खड़ा किया था। शर्तों के साथ सरकारी सहायता लेना उन्हें स्वीकार नहीं था।

आजादी के बाद हमारे देश में वैज्ञानिक प्रयोगशालाएं स्थापित करने का जो दौर चला, रामन् उसके कटु आलोचक थे। प्रयोगशालाओं में इतना अधिक धन लगाना उन्हें पसंद नहीं था। उनका एक काफी तीखा कथन भी है: ''शाहजहां ने अपनी एक प्रिय बेगम को दफनाने के लिए ताजमहल बनवाया। राष्ट्रीय प्रयोगशालाएं वैज्ञानिक उपकरणों को दफनाने के लिए बनाई गई हैं।''

रामन् को सबसे ज्यादा आकर्षित करते थे– रंग। रंग का गहन अध्ययन करने के लिए उन्होंने अपने संस्थान में तरह-तरह की तितलियों, फूलों, मणिभों और कीमती पत्थरों को संगृहीत किया था। रामन् जीवन के अंतिम दिनों तक ध्वनि व रंग के बोध के बारे में खोजबीन करते रहे, विज्ञान के लिए ही पूर्णतः समर्पित रहे।

परमाणु विस्फोट गाथा : एलमोगोर्दो से पोकरण-2 तक

— गुणाकर मुळे

जुलाई 1939 का एक दिन। अमेरिका में आकर बसे हुए हंगेरी के दो वैज्ञानिक–लियो झिलार्ड और यूजेन विग्नेर–लॉंग द्वीप में गर्मियों की छुट्टियां बिता रहे लंबे अस्त-व्यस्त बालों वाले एक मशहूर वैज्ञानिक से मिलने जा रहे थे। काफी देर तक तलाशने के बाद भी उस वैज्ञानिक का मकान नहीं मिला, तो झिलार्ड बोले– ''चलो वापस चलते हैं। नियति को शायद यही मंजूर हो। ऐसे मामले में शासन से अपील करने के लिए उनके जैसे महान वैज्ञानिक की मदद लेना हमारी संभवतः बहुत बड़ी भूल होगी। ऐसी चीज एक बार सरकार के कब्जे में चली जाए, तो फिर उसे कभी छुटकारा नहीं मिल सकता।''

''मगर यह काम करना हमारा फर्ज है'', विग्नेर बोले, ''इस भयावह संकट के निवारण में हमें अपना योग देना ही चाहिए।''

यह 'भयावह संकट' था– जर्मनी के वैज्ञानिकों द्वारा यूरेनियम बम का निर्माण करके उसे नाजी सेना को सौंप दिए जाने की संभावना।

अंततः, सात साल के एक बालक ने झिलार्ड और विग्नेर को उस लंबे बिखरे बालों वाले वैज्ञानिक के निवास-स्थान तक पहुंचा दिया। बालक ने यह भी बताया कि वह आइंस्टाइन को अच्छी तरह जानता है।

झिलार्ड और विग्नेर का मकसद था, आइंस्टाइन को यह बताना कि यूरेनियम में विखंडन की शृंखलाबद्ध अभिक्रिया संभव है। उन्होंने आइंस्टाइन को जानकारी दी कि जर्मनी के कैसर विल्हेल्म इंस्टिट्यूट के वैज्ञानिक ओट्टो हॉन और फ्रिट्ज स्ट्रासमान ने न्यूट्रॉन कणों से यूरेनियम के परमाणु को दो भागों में विखंडित करने में सफलता प्राप्त की है। **लिजे माइटनेर** ने, जिसने आट्टो हॉन के साथ पहले खोजकार्य किया था, इस तथ्य की पुष्टि की है और इसे विखंडन (फिशन) का नाम दिया है। लिजे माइटनेर, ऑस्ट्रियाई यहूदी होने के कारण, जर्मनी छोड़कर स्वीडन चली गई हैं। उनके भतीजे भौतिकीविद् ओट्टो फ्रिश भी उनके साथ हैं। दोनों ही तुरंत कोपेनहेगन पहुंचे और यूरेनियम के विखंडित होने की जानकारी नील्स बोर को दी। नील्स बोर के अमेरिका पहुंचने पर यहां की कई प्रयोगशालाओं में विखंडन के सफल प्रयोग हुए हैं। यूरेनियम में शृंखलाबद्ध विखंडन संभव जान पड़ता है।

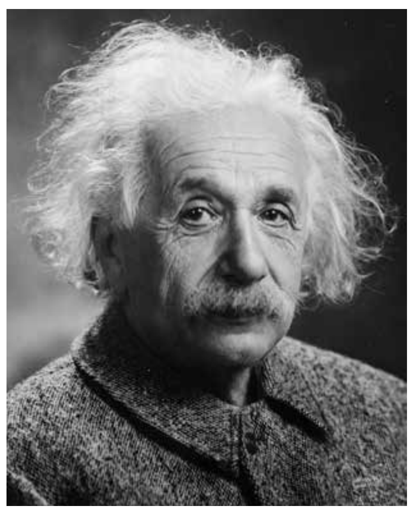
विखंडन में आइंस्टाइन की बड़ी दिलचस्पी थी। सन् 1905 में उन्होंने ही पहली बार प्रतिपादित किया था कि द्रव्य को ऊर्जा में और ऊर्जा को द्रव्य में बदला जा सकता है, और इसके लिए एक संबंध-सूत्र भी प्रस्तुत कर दिया था :



ओट्टो हॉन



फ्रिट्ज स्ट्रासमान



अल्बर्ट आइंस्टाइन

$E=mc^2$, जहां E= ऊर्जा, m= द्रव्य और c= प्रकाश का वेग है (लगभग 3,00,000 किलोमीटर प्रति सेकेंड)।

यूरेनियम के विखंडन की श्रृंखलाबद्ध अभिक्रिया को समझने में कोई विशेष कठिनाई नहीं है। एक न्यूट्रॉन कण यूरेनियम के नाभिक को तोड़ता है, तो वह दो नए न्यूट्रॉन कणों को जन्म देता है। वे दो न्यूट्रॉन जब दो नए यूरेनियम नाभिकों को तोड़ते हैं, तो चार नए न्यूट्रॉनों को जन्म देते हैं। इसी तरह, वे चार न्यूट्रॉन आगे आठ न्यूट्रॉनों को जन्म देते हैं, और यह सिलिसिला जारी रहता है। साथ ही, ऊर्जा का उत्पादन भी तेजी से बढ़ता जाता है।

यूरेनियम के विखंडन की यह खोज द्वितीय महायुद्ध आरंभ होने के कुछ ही समय पहले हुई थी। भौतिकीविदों ने पता लगा लिया था कि एक औंस (करीब 23 ग्राम) यूरेनियम का विखंडन होने पर 600 टन टीएनटी तुल्य विस्फोटक शक्ति पैदा होती है। ऐसे हथियारों से युद्ध लड़े जाने का विचार निश्चय ही भयावह था। मगर मित्र राष्ट्रों के पहले नाजी जर्मनी के हाथ ऐसा हथियार लग जाने का विचार और भी अधिक भयावह था।

लियो झिलार्ड ने यूरेनियम के श्रृंखलाबद्ध विखंडन के दूरगामी परिणामों पर आइंस्टाइन के साथ चर्चा की। तय हुआ कि अमेरिकी राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट के नाम एक पत्र तैयार किया जाएगा और आइंस्टाइन उन पर हस्ताक्षर करेंगे। अगली बार झिलार्ड आइंस्टाइन से मिलने गए, तो उनके साथ विग्नेर के अलावा हंगेरी के ही एक और भौतिकीविद् थे– एडवर्ड टेलर और तैयार था, एक पत्र, जिसके मुख्यांश हैं :



एडवर्ड टेलर

''एनरिको फर्मी और लियो झिलार्ड की ताजी खोजों से पता चलता है कि यूरेनियम तत्व को निकट भविष्य में एक नए और महत्त्वपूर्ण ऊर्जा-स्रोत में बदला जा सकता है। ..... यूरेनियम की बड़ी राशि में श्रृंखलाबद्ध नाभिकीय अभिक्रिया शुरू करना संभव जान पड़ता है। इस प्रक्रिया में विशाल मात्रा में ऊर्जा और रेडियम-जैसे तत्वों की राशि प्राप्त होगी। ..... इसका इस्तेमाल करके बम भी बनाए जा सकेंगे। एक नए किस्म के अत्यंत शक्तिशाली बमों का निर्माण भी संभव है, हालांकि पूरे यकीन के साथ नहीं कहा जा सकता।'' आइंस्टाइन ने पत्र में यह भी अपील की कि अमेरिका को ऐसा हथियार नाजी जर्मनी के पहले बना लेना चाहिए। पत्र के अंत में उन्होंने यह भी नमूद किया कि, ''इतिहास में पहली बार मनुष्य ऐसी ऊर्जा का इस्तेमाल करेगा जिसके स्रोत सूर्य में नहीं हैं।'' और, उसके बाद उन्होंने पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए– **अल्बर्ट आइंस्टाइन**। वह 2 अगस्त, 1939 का दिन था!

झिलार्ड के एक मित्र के जरिए आइंस्टाइन का पत्र रूजवेल्ट के पास 11 अक्तूबर, 1939 को पहुंचा। बीच के काल में, 1 सितम्बर, 1939 को, यूरोप में दूसरा महायुद्ध शुरू हो गया था। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने एक 'यूरेनियम समिति' की स्थापना कर दी। यूरेनियम के बारे में गहन खोजबीन शुरू हो गई।

पहली आवश्यकता थी पर्याप्त मात्रा में काफी शुद्ध यूरेनियम प्राप्त करना। धरातल में यूरेनियम काफी मात्रा में (400 टन चट्टानों में करीब 2 ग्राम) उपलब्ध है, मगर इसके समृद्ध खनिज कनाडा, चेकोस्लोवाकिया (अब विभाजित) और बेल्जियम, कांगो जैसे कुछ ही देशों में पाए जाते हैं। सन् 1939 तक यूरेनियम को शुद्ध करने की विधियां नहीं खोजी गई थीं। काफी हद तक शुद्ध यूरेनियम सन् 1942 से ही प्राप्त होने लगा।

लेकिन यूरेनियम के बारे में और भी कई समस्याएं थीं। इसके दो प्रमुख समस्थानिक (आइसोटोप) हैं– **यूरेनियम-235** और **यूरेनियम-238**। नील्स बोर ने पहले ही अनुमान लगा लिया था कि यू-238 के बजाए यू-235 को विखंडित करना अधिक आसान होगा। मगर कठिनाई यह है कि प्राकृतिक यूरेनियम के 140 भागों में 139 भाग यू-238 के होते हैं। और यू-235 का केवल एक ही भाग होता है। इसलिए यू-238 में से यू-235 को बड़े पैमाने पर पृथक करना अत्यावश्यक था या कम-से-कम एक ऐसा मिश्रण प्राप्त करना जरूरी था जिसमें यू-235 की मात्रा 90 प्रतिशत से अधिक हो।

यू-235 को यू-238 से पृथक करने



नील्स बोर

के लिए एक से अधिक तरीकों के बारे में सोचा गया। यू-235 का समस्थानिक यू-238 से 1.3 प्रतिशत कम भारी है, इसलिए गैसीय विसरण (गैसीयस डिफ्यूश्ज़न) की विधि को अधिक महत्त्व दिया गया। इसके लिए अमेरिका के टेनीसी प्रांत के ओक रिज स्थान में एक गुप्त शहर की स्थापना की गई। यहां अरबों डॉलर खर्च करके गैसीय विसरण विधि से यू-235 को पृथक करने के लिए कई विशाल संयंत्र (प्लांट) खड़े किए गए। किसी उद्योग के लिए निर्मित वे दुनिया के तब तक के सबसे बड़े कारखाने थे। उनके लिए उतनी ही बिजली खर्च होती थी जितनी कि समूचे न्यूयॉर्क शहर के लिए!

कोयले के एक छोटे टुकड़े में आग लगाकर उसे जलते रखना संभव नहीं है। यूरेनियम-235 के बारे में भी यही बात है। भौतिकीविदों ने पता लगा लिया कि शृंखलाबद्ध अभिक्रिया को चालू रखने के लिए संवर्धित यूरेनियम-235 के कम से कम कितने बड़े पिंड की आवश्यकता होती है। इसे क्रांतिक द्रव्यमान (क्रिटिकल मास) का नाम दिया गया।

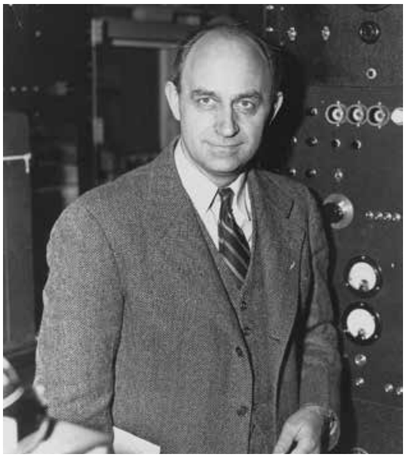
अब अगला कदम था, शृंखलाबद्ध अभिक्रिया को प्रायोगिक तौर पर स्थापित करना। देखा गया कि तीव्र न्यूट्रॉनों की अपेक्षा मंद (मोडरेट) न्यूट्रॉन यू-235 द्वारा आसानी से अवशोषित किए जाते हैं। इसलिए तीव्र न्यूट्रॉनों को मंद बनाने वाले उपयुक्त साधन की तलाश शुरू हुई। भारी पानी एक बढ़िया मंदनक (मोडरेटर) है, मगर उन दिनों इसे तैयार करने में बहुत ज्यादा खर्च आता था और इसके उपयोग में कुछ कठिनाइयां भी थीं। अंततः अति शुद्ध ग्रेफाइट (कार्बन) को मंदनक के रूप में अपनाया गया। सन् 1941 में प्रयोगों से यह भी स्पष्ट हो गया कि सामान्य शुद्ध यूरेनियम और ग्रेफाइट के मिश्रण में भी शृंखलाबद्ध अभिक्रिया संभव है, बशर्ते कि यूरेनियम की मात्रा काफी अधिक हो।

परमाणु ऊर्जा के अनुसंधान के लिए अमेरिकी सैनिक शासन की ओर से अधिकाधिक धन उपलब्ध होने लगा। फिर 6 दिसम्बर, 1941 को राष्ट्रपति रूजवेल्ट के आदेश से एटम बम के निर्माण के लिए 'मैनहैटन इंजीनियर डिस्ट्रिक्ट' नामक एक विशाल योजना बनाई गई। अगले दिन जापानी विमानों ने पर्ल हार्बर पर बमबारी की। अमेरिका ने जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। फिर जर्मनी व इटली ने अमेरिका के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। डर बढ़ता ही गया कि जर्मनी एटम बम का निर्माण करके अमेरिका और उनके सहयोगी राष्ट्रों के खिलाफ उसका इस्तेमाल कर सकता है। एटम बम बनाने की दिशा में अमेरिका के और अमेरिका में आकर बसे हुए वैज्ञानिकों के प्रयास बहुगुणित हो गए।

इटली के भौतिकीविद् एनरिको फर्मी और उनके सहयोगियों को क्रांतिक (क्रिटिकल) आकार के शृंखलाबद्ध रिएक्टर के निर्माण की जिम्मेदारी सौंपी गई। इसके लिए शिकागो विश्वविद्यालय के फुटबाल स्टेडियम के नीचे एक गुप्त



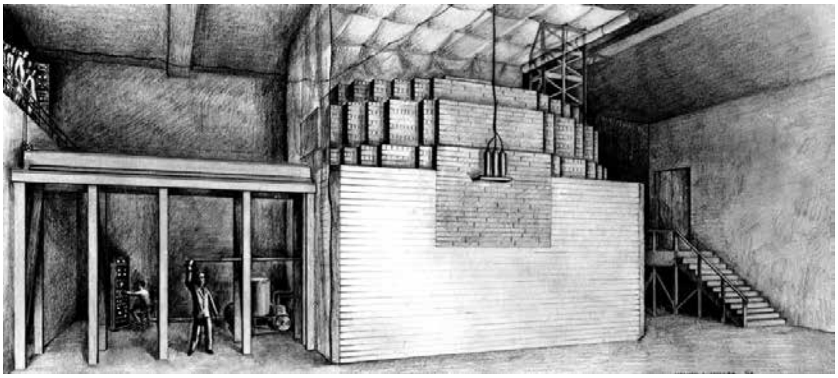
अर्नेस्ट रदरफोर्ड



एनरिको फर्मी

'धातु प्रयोगशाला' बनाई गई। उस समय तक 6 टन शुद्ध यूरेनियम उपलब्ध हो गया था। एकांतर से ग्रेफाइट और यूरेनियम की परतें रखकर कुल 57 परतों का एक रिएक्टर (जिसे उस समय 'पाइल' का छद्म नाम दिया गया था) बनाया गया और बीच-बीच में कैडमियम के नियंत्रक दंड स्थापित करने के लिए उसमें छिद्र छोड़े गए। कैडमियम एक ऐसी धातु है जो बड़ी मात्रा में न्यूट्रॉनों को पकड़ सकती है।

फिर, 2 दिसम्बर, 1942 का ऐतिहासिक दिन आया। उस दिन रिएक्टर (पाइल) में से कैडमियम दंड धीरे-धीरे बाहर खींचे गए। दोपहर को 3 बजकर 45 मिनट पर सुस्पष्ट हो गया कि रिएक्टर में स्वनिर्भर प्रक्रिया शुरू हो गई है। वह परमाणु युग के श्रीगणेश का क्षण था। उस दिन प्रमाणित हो गया कि परमाणुओं से ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है और उसे नियंत्रण में रखा जा सकता है। यह एक महान सफलता थी। इसकी सूचना देने के लिए प्रो. आर्थर कॉम्पटन ने उसी दिन शिकागो से प्रो. जेम्स कोनान्ट को, जो अमेरिकी सरकार के एक उच्च वैज्ञानिक पदाधिकारी थे, कैम्ब्रिज (मैसाचुसेट्स) टेलीफोन किया: ''आपको यह जानकर खुशी होगी कि इटली के नौचालक



शिकागो के फुटबाल स्टेडियम के नीचे बनाए गए प्रथम शृंखलाबद्ध रिएक्टर

अभी-अभी नई दुनिया में पहुंच गए हैं।''

''देशी लोग कैसे हैं?'' कोनान्ट ने पूछा।

''बहुत अनुकूल!''

यहां यूरेनियम के विखंडन से संबंधित शोधकार्य के बारे में एक महत्त्व की बात को जान लेना जरूरी है। यूरेनियम के विखंडन का सुझाव फ्रिश और माइटनेर ने जनवरी 1939 में दिया था। कुछ ही सप्ताहों में प्रयोगों से इसकी पुष्टि हो गई। आगे के कुछ ही सप्ताहों में अमेरिका में पहुंचे हुए फर्मी और झिलार्ड जैसे कुछ वैज्ञानिकों ने विखंडन की प्रक्रिया के लिए, गणनाएं करके, सैद्धांतिक विचार प्रस्तुत कर दिए थे। साथ ही, झिलार्ड, फर्मी, विग्नेर, एडवर्ड टेलर, विक्टोर वाइस्सकोफ जैसे कुछ प्रमुख भौतिकीविदों को यूरेनियम के विखंडन के सैनिक उपयोग की संभावनाएं स्पष्ट होने लगी थीं। ये सभी यूरोप के वैज्ञानिक थे और नाजी व फासिस्ट उत्पीड़नों से बचने के लिए उन्होंने अमेरिका में शरण ली थी। उन्हें यूरोप में पैदा होने वाली भयावह परिस्थितियों का अंदाजा था। सन् 1939 के ग्रीष्म तक अमेरिका में पैदा हुए वैज्ञानिकों को यूरेनियम के विखंडन के सैनिक उपयोग का कोई ख्याल नहीं था।

यूरेनियम के विखंडन की बात स्पष्ट हो जाने के बाद नील्स बोर को लगा कि नाभिकीय ऊर्जा से संबंधित अनुसंधान-कार्य की महत्त्वपूर्ण जानकारी के प्रकाशन पर स्वेच्छा से रोक लग जानी चाहिए। अमेरिकी और ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने उनके इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। मगर फ्रांसीसी भौतिकीविद् फ्रेदेरिक झॉल्यो (1900-1958 ई.) ने इसे स्वीकार नहीं किया; उनका कहना था कि इस विषय का एक महत्त्वपूर्ण शोध-निबंध प्रकाशित हो गया है, इसलिए अब इस प्रतिबंध का कोई अर्थ नहीं रह गया है। नतीजा यह हुआ कि सन् 1939 में नाभिकीय विखंडन के बारे में बहुत सारे शोध-निबंध प्रकाशित हुए। इनके प्रकाशन पर पूर्ण स्वैच्छिक प्रतिबंध अप्रैल 1940 से ही लागू हुआ जो आगे कई साल तक चला।

2 दिसम्बर, 1942 के दिन शिकागो के फुटबाल स्टेडियम के नीचे बने रिएक्टर में यूरेनियम के विखंडन की शृंखलाबद्ध प्रक्रिया शुरू हुई। धरती पर पहली बार नाभिकीय ऊर्जा उपलब्ध हुई। मगर शिकागो का वह रिएक्टर महज एक प्रयोग था, उपयोगी ऊर्जा पैदा करने में असमर्थ था। उसमें 2 दिसम्बर, 1942 को जो ऊर्जा पैदा हुई वह एक छोटे बल्ब को प्रज्ज्वलित करने में ही समर्थ थी। उस रिएक्टर में एकाएक और विस्फोट के साथ नहीं, बल्कि धीरे-धीरे ऊर्जा पैदा होती थी। रूजवेल्ट को लिखे पत्र में आइंस्टाइन ने जिस 'अत्यंत शक्तिशाली बम' का जिक्र किया था उसे बनाना अभी काफी दूर की बात थी।

सन् 1941 में एक और महत्त्वपूर्ण बात की जानकारी मिली। विखंडित हो सकने वाले एक और तत्व का पता चला। मंद न्यूट्रॉन को ग्रहण करके यूरेनियम-238 समस्थानिक पहले यूरेनियम-239 में, फिर नेप्टूनियम-239 में और अंत में प्लूटोनियम-239 में बदल जाता है। प्लूटोनियम-239, यूरेनियम-235 की तरह ही, मंद न्यूट्रॉनों से विखंडित हो जाता है। बड़ी मात्रा में यूरेनियम-235 उपलब्ध हो जाना निश्चित नहीं था, इसलिए प्लूटोनियम तैयार करने का निर्णय लिया गया।

प्लूटोनियम के निर्माण के लिए वाशिंगटन प्रांत के ओक रिज और हानफोर्ड स्थानों पर सन् 1943 में विशेष प्रकार के विशाल रिएक्टर स्थापित किए गए। इन रिएक्टरों में से यूरेनियम को बीच-बीच में निकाला जा सकता था। साथ ही यूरेनियम से प्लूटोनियम को अलग करने की रासायनिक विधियां भी खोजी गईं। विशेष बात यह थी कि इन रिएक्टरों को पानी का उपयोग करके ठंडा रखा जाता था। प्लूटोनियम पैदा करने वाले इन रिएक्टरों के संचालन से वैज्ञानिकों को नाभिकीय (न्यूक्लीयर) भौतिकी के बारे में बहुत सारी उपयोगी जानकारी मिली।

सन् 1945 के आरंभ तक एटम बम बनाने के लिए पर्याप्त मात्रा में शुद्ध यूरेनियम-235 और प्लूटोनियम-239 उपलब्ध हो गया था मगर उसके पहले ही न्यू मैक्सिको के लॉस अलमोस स्थान पर गुप्त रूप से एटम बम बनाने की तैयारियां शुरू हो गई थीं। भौतिकीविद् रॉबर्ट आप्पेनहाइमेर (जिन्हें उनके मित्र 'ओप्पी' कहते थे) लॉस अलमोस अनुसंधान-कार्य के निदेशक और एटम बम बनाने में जुटे वैज्ञानिक-दल के



रॉबर्ट ओप्पेनहाइमर

मुखिया थे। वहां चोटी के बहुत सारे वैज्ञानिक एकत्र हो गए थे– एनारिको फर्मी, एमिल्यो सेग्रे, हरबर्ट एंडरसन, ओट्टो फ्रिश और नील्स बोर आदि भी। वहां कनाडा और इंग्लैंड के वैज्ञानिक भी पहुंच गए थे। इंग्लैंड का नेतृत्व न्यूट्रॉन कण के आविष्कारक जेम्स चाडविक कर रहे थे। ब्रिटिश दल में स्विट्जरलैंड, जर्मनी, पोलैंड और ऑस्ट्रिया के वैज्ञानिक भी शामिल थे। लॉस अलमोस की तमाम गतिविधियों को 'गोपनीय' रखा गया मगर जहां कई देशों के इतने सारे वैज्ञानिक एकत्र हुए हों वहां की जानकारी को लंबे समय



योहन फोन न्यूमान

तक गोपनीय रख पाना क्या संभव था?

एटम बम के विस्फोट के लिए नाभिकीय श्रृंखला का अत्यंत तेजी से संपन्न होना अत्यावश्यक था। यह तीव्र न्यूट्रॉनों से हो सकता था, इसलिए किसी मंदनक की आवश्यकता नहीं थी। चूंकि विखंडनशील पदार्थ (यू-235 या प्लू-239) की क्रांतिक द्रव्यराशि (हवा से किसी भटके न्यूट्रॉन को ग्रहण करके) स्वयं ही विस्फोटित हो जाती है, इसलिए बम के ईंधन को दो या अधिक हिस्सों में विभक्त किया गया। इन हिस्सों को तेजी से नजदीक लाने के लिए सामान्य विस्फोटक (जैसे टीएनटी) की व्यवस्था की गई। इस प्रकार की व्यवस्था में एक ट्यूब के विपरीत सिरों पर यूरेनियम के दो खंड स्थापित किए गए, और इसे थिन मैन (पतला आदमी) का नाम दिया गया। दूसरी व्यवस्था एक बड़े गेंद के आकार की थी। परिधि-क्षेत्र में स्थापित यू-235 या प्लू-239 के खंडों को तेजी से केंद्र की ओर ढकेल कर अंतःस्फोट (इम्प्लोश्जॅन) करने की इस व्यवस्था को फैट मैन (मोटा आदमी) नाम दिया गया था। (सन् 1974 में पोकरण में जिस परमाणु युक्ति का परीक्षण किया गया था वह अंतःस्फोट की व्यवस्था पर ही आधारित थी।)

स्पष्ट है कि, छोटे पैमाने के परमाणु विस्फोट का परीक्षण संभव नहीं था। इसलिए न्यू मेक्सिको के **एलमोगोर्दो** स्थान पर 16 जुलाई, 1945 को सुबह 5.30 बजे एक परिपूर्ण एटम बम या परमाणु बम (वस्तुतः इसे नाभिकीय-विखंडन बम कहना अधिक उपयुक्त होगा) के परीक्षण की व्यवस्था की गई। परीक्षण वैज्ञानिकों की आशा से भी अधिक विस्फोटक साबित हुआ। प्लूटोनियम से बनाए गए परमाणु बम का वह प्रथम विस्फोट 20,000 टन (20 किलोटन) टीएनटी (ट्राइनाइट्रोटोल्यूइन) के तुल्य था।

सन् 1945 के आरंभ में जब इस पहले परमाणु बम के निर्माण का कार्य शुरू हो गया था, तब आइंस्टाइन और दूसरे कई वैज्ञानिकों को एक नई चिंता सताने लग गई थी। जर्मनी का पतन हो गया था। झिलार्ड लिखते हैं: ''सन् 1945 में जर्मनी के भय के बारे में सोचना हमने छोड़ दिया था। अब हमारा भय था– अमेरिकी सरकार दूसरे देशों के साथ क्या करेगी।''

झिलार्ड पुनः आइंस्टाइन के पास गए और उनसे राष्ट्रपति रूजवेल्ट के नाम इस आशय का पत्र लिखने का अनुरोध किया कि जापान के खिलाफ परमाणु बम का इस्तेमाल न किया जाए। आइंस्टाइन ने पत्र भेजा, मगर वह रूजवेल्ट को पढ़ने को नहीं मिला। उसके पहले ही 12 अप्रैल, 1945 को रूजवेल्ट का अचानक देहांत हो गया!

एलमोगोर्दो में विस्फोटित किए गए परमाणु बम के अलावा अमेरिका में दो और परमाणु बम बनाए गए थे। इनमें एक था 4.5 टन भार का यूरेनियम बम जिसे 'लिटल बॉय' का नाम दिया गया था। दूसरा था 5 टन भार का प्लूटोनियम बम, जिसे 'फैट मैन' का नाम दिया गया था। अप्रैल 1945 में रूजवेल्ट के देहांत के बाद ट्रूमैन ने राष्ट्रपति का पद संभाला था। वे जल्दी से विजय प्राप्त करने का श्रेय लेने के लिए उतावले थे। उनसे आदेश मिल जाने पर 6 अगस्त, 1945 को 'लिटल बॉय' को जापान के हिरोशिमा नगर पर डाला गया और तीन दिन बाद 9 अगस्त, 1945 को 'फैट मैन' को नागासाकी नगर पर। इन दोनों बमों का विस्फोट 650 मीटर की ऊंचाई पर हुआ और इनकी संयुक्त विस्फोटक शक्ति 35 किलोटन के बराबर थी। हिरोशिमा और नागासाकी की विनाश-लीला से हम सभी परिचित हैं। तीन



6 अगस्त 1945 को हिरोशिमा पर डाला गया अमेरिकी परमाणु बम 'लिटिल बॉय'

साल पहले शुरू हुआ परमाणु युग अब एक हकीकत बन गया, समूची मानव-जाति के लिए भारी चिंता का मामला बन गया। हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम डाले जाने पर पश्चाताप में निकले आइंस्टाइन के उद्‌गार थे– "हां, मैंने ही बटन दबाया था", यानी मैंने ही रूजवेल्ट को पत्र लिखा था।

आगे के चार साल तक अमेरिका इस भ्रांति में रहा कि, सुरक्षा का कड़ा बंदोबस्त रहे, तो परमाणु बम की प्रौद्योगिकी को दूसरे देशों से सुदीर्घ काल के लिए 'गोपनीय' रखा जा सकता है। वस्तुतः सन् 1939 से ही

कालानुक्रम

ई.पू. 440 (लगभग): यूनानी दार्शनिक **देमोक्रितस्** (470-400 ई पू.) ने कहा कि सृष्टि की सारी चीजें अतिसूक्ष्म ठोस परमाणुओं से बनी हैं। परमाणु को उन्होंने 'अ-तोमन्' यानी अविभाज्य व अवेध्य माना। यूनानी भाषा के इसी 'अ-तोमन्" शब्द से आधुनिक यूरोप का "एटम" शब्द बना है मगर 'एटम' अब अविभाज्य नहीं रह गया है!

ई.पू. 400 (लगभग): वैशेषिक दर्शन के प्रणेता **कणाद** ने परमाणु की धारणा प्रस्तुत की। उनके अनुसार, परमाणु सूक्ष्म परिमाण वाले कण हैं, सृष्टि के निर्माण की ईंटें हैं। शायद अपने इसी मत के कारण उन्हें कणाद (कणों को खाने वाला) कहा गया।

1803 ई.: आंग्ल वैज्ञानिक **जॉहन डॉल्टन** (1766-1844) द्वारा नए परमाणु सिद्धांत का प्रतिपादन। इसकी विस्तृत व्याख्या उन्होंने 1810 ई. में की। डॉल्टन के मतानुसार, सभी चीजें परमाणुओं से निर्मित हैं, परमाणुओं का सृजन तथा विनाश संभव नहीं, एक ही तत्व के सभी परमाणु समरूप होते हैं, अलग-अलग तत्वों के परमाणु अलग-अलग तरह के होते हैं और परमाणुओं की पुनर्व्यस्था के साथ ही रासायनिक अभिक्रियाएं संपन्न होती हैं।

1869 ई.: रूसी वैज्ञानिक **दिमित्री इवानोविच मेंडेलीव** (1834-1907) द्वारा तत्वों की आवर्त-तालिका का प्रकाशन।

1896 ई.: फ्रांसीसी वैज्ञानिक **आंत्वान आंरी बेक्रेल** (1852-1908) द्वारा यूरेनियम के लवणों में रेडियोसक्रियता की खोज।

1897 ई.: आंग्ल वैज्ञानिक **जोझेफ जॉन टॉमसन** (1856-1940) द्वारा इलेक्ट्रॉन की खोज।

1899-1900: **अर्नेस्ट रदरफोर्ड** (1871-1937) द्वारा रेडियोसक्रियता में अल्फा, बीटा व गामा किरणों की पहचान।

1905: **रदरफोर्ड** और **फ्रेडरिक सोड्डी** (1877-1966) ने नाभिकीय तत्वांतरण का सिद्धांत प्रस्तुत किया।

अल्बर्ट आइंस्टाइन (1879-1955) ने अपने विशिष्ट आपेक्षिकता के सिद्धांत के साथ ही ऊर्जा और द्रव्य के परस्पर संबंध को दर्शाने वाला सूत्र $E=mc^2$ प्रस्तुत किया।

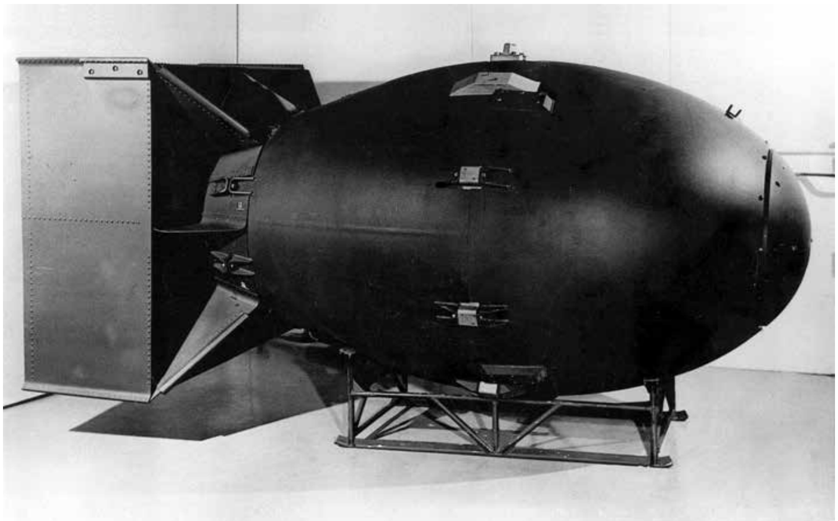
1913: **फ्रेडरिक सोड्डी** द्वारा समस्थानिकों (आइसोटोपों) के अस्तित्व का प्रतिपादन।

1919 ई.: **रदरफोर्ड** द्वारा नाभिक का कृत्रिम विधि से विघटन।

1932: आंग्ल भौतिकीविद् **जेम्स चाडविक** (1891-1974) द्वारा न्यूट्रॉन कण की खोज।

1934: इटली के भौतिकीविद् **एनरिको फर्मी** (1901-1954) ने पता लगाया कि मंद न्यूट्रॉन नाभिकों के साथ अधिक आसानी से क्रियान्वित होते हैं।

फ्रांसीसी वैज्ञानिक-दंपत्ति **ईरेन** (1897-1956) और **फ्रेदेरिक झॉल्यो क्यूरी** (1900-1958) ने कृत्रिम रेडियोसक्रियता की खोज की।



9 अगस्त 1945 को नागासाकी पर डाला गया अमेरिकी परमाणु बम 'फैट मैन'

नाभिकीय विखंडन से संबंधित सिद्धांत व तथ्य जाहिर होते आ रहे थे और सोवियत संघ ने सन् 1940 में ही इस मामले में खोजबीन शुरू कर दी थी। अमेरिका को दूसरा महायुद्ध अपनी भूमि पर नहीं लड़ना पड़ा। यदि सोवियत संघ को अपनी भूमि पर जर्मन हमले को विफल बनाने के लिए अपने सारे साधन न एकत्र करने पड़ते, तो वह भी सन् 1945 में ही अपना परमाणु बम बना लेता। सोवियत संघ ने अपने पहले परमाणु बम का परीक्षण 22 सितम्बर, 1949 को किया। वह बम हिरोशिमा पर डाले गए बम से छह गुना अधिक

1939: जर्मन वैज्ञानिक **ओट्टो हान** (1879-1968) द्वारा की गई यूरेनियम के नाभिक के विखंडन की खोज (1938 ई.) की **लिजे माइटनेर** (1878-1968) और **ओट्टो फ्रिश** (1904-1979) द्वारा सही पहचान और व्याख्या।

2 अगस्त; **अल्बर्ट आइंस्टाइन** ने अमेरिका के राष्ट्रपति **रूजवेल्ट** को परमाणु बम बनाए जाने के संबंध में पत्र लिखा।

1942, 2 दिसम्बर: शिकागो विश्वविद्यालय के फुटबाल स्टेडियम के नीचे बने नाभिकीय रिएक्टर (पाइल) में स्वनिर्भर नाभिकीय विखंडन-शृंखला अभिक्रिया का श्रीगणेश।

1945, 16 जुलाई: न्यू मेक्सिको के एलमोगोर्दो स्थान पर अमेरिका द्वारा पहले विखंडन या परमाणु बम का परीक्षण।

1945, 6 अगस्त: जापान के हिरोशिमा नगर पर परमाणु बम डाला गया।

9 अगस्त: जापान के नागासाकी नगर पर परमाणु बम डाला गया।

1948: भारत में परमाणु ऊर्जा आयोग की स्थापना।

1949, 22 सितम्बर: सोवियत संघ द्वारा अपने पहले एटम बम का परीक्षण।

1952, 3 अक्तूबर: इंग्लैंड ने अपने पहले परमाणु बम का परीक्षण किया।

1 नवम्बर: अमेरिका ने अपने पहले हाइड्रोजन बम का विस्फोट किया।

1953, 12 अगस्त: सोवियत संघ ने अपने पहले हाइड्रोजन बम का विस्फोट किया।

1954: भारत में परमाणु ऊर्जा विभाग की स्थापना।

अमेरिका द्वारा मार्शल द्वीप-समूह के बिकिनी स्थान पर हाइड्रोजन विस्फोट।

1957: तुर्भे (ट्रांबे) में परमाणु ऊर्जा केंद्र का उद्घाटन। बाद में इसे भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र का नाम दिया गया।

1960, 13 फरवरी: फ्रांस द्वारा अपने पहले परमाणु बम का परीक्षण।

1964, 16 अक्तूबर: चीन ने अपने पहले परमाणु बम का विस्फोट किया।

1967: चीन ने अपने पहले हाइड्रोजन बम का विस्फोट किया।

1974, 18 मई: भारत ने पोकरण में अपना पहला परमाणु परीक्षण किया।

1998, 11 मई: भारत ने पोकरण क्षेत्र में तीन नाभिकीय विस्फोटों का आयोजन किया। इनमें से दो विखंडन-विस्फोट थे और एक तापनाभिकीय (हाइड्रोजन) बम का विस्फोट था।

13 मई: भारत ने पोकरण में ही दो और विखंडन-बम विस्फोटित किए।

28 मई: पाकिस्तान ने पहली बार एक साथ पांच विखंडन (एटम) बमों के परीक्षण किए।

30 मई: पाकिस्तान ने एक और एटम बम का परीक्षण किया।

— गुणाकर मुले

शक्तिशाली था।

इंग्लैंड के लिए परमाणु बम बनाने में कोई विशेष कठिनाई नहीं थी, क्योंकि वहां के वैज्ञानिकों ने अमेरिकी परमाणु बम बनाने में भरपूर योग दिया था। इंग्लैंड ने अपने पहले परमाणु बम का परीक्षण 3 अक्तूबर, 1952 को किया। 'नाभिकीय क्लब' में शामिल होने वाला चौथा देश फ्रांस था। फ्रांस ने 13 फरवरी, 1960 को सहारा के मरुस्थल में अपने प्लूटोनियम बम का परीक्षण किया। फिर चीन ने 16 अक्तूबर, 1964 को परमाणु बम के विस्फोट की घोषणा की और इस तरह वह नाभिकीय शक्ति वाला दुनिया का पांचवां देश बन गया। तदनंतर 18 मई, 1974 को भारत ने पोकरण में अपने पहले नाभिकीय बम का परीक्षण किया। उसके 24 साल बाद 11 और 13 मई 1998 को पोकरण-क्षेत्र में ही भारत ने पांच और नाभिकीय विस्फोट किए, जिनमें से एक, जैसा कि बताया गया है, तापनाभिकीय बम यानी हाइड्रोजन बम का विस्फोट था। परमाणु ऊर्जा आयोग के अनुसार, 11 मई को किए गए दो विखंडन विस्फोट 15 किलोटन और 0.2 किलोटन के थे और 13 मई को किए गए दो विखंडन विस्फोट 0.2 से 0.6 किलोटन तक की शक्ति के थे। 11 मई को किया गया तापनाभिकीय विस्फोट 45 किलोटन शक्ति का था। इसकी अधिक चर्चा हम आगे करेंगे।

पाकिस्तान पिछले कई सालों से नाभिकीय विस्फोट की तैयारियां करता आ रहा था। यूरेनियम-235 या प्लूटोनियम-239 उपलब्ध रहे, तो फिर परमाणु बम बनाने में कोई विशेष कठिनाई नहीं है। अतः भारतीय विस्फोटों के करीब एक पखवाड़े बाद ही पाकिस्तान ने पहले 28 मई को एक साथ 5 नाभिकीय विस्फोट किए और फिर 30 मई को एक और विस्फोट किया, तो इसमें किसी को कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। ये विस्फोट करीब 10 किलोटन के थे, हालांकि निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। ज्यादा संभव यही जान पड़ता है कि पाकिस्तान ने अपने परमाणु बमों में

शब्दावली

यूरेनियम (Uranium): एक रेडियोसक्रिय तत्व जिसका परमाणु क्रमांक 92 है। इसके तीन समस्थानिक हैं– यूरेनियम-238, यूरेनियम-235 और यूरेनियम-234। इनमें से यूरेनियम-235 का ही विस्फोटक ऊर्जा प्राप्त करने के लिए इस्तेमाल हो सकता है।

प्लूटोनियम (Plutonium): मानव-निर्मित 94 परमाणु-क्रमांक का तत्व। इसे यूरेनियम-238 पर न्यूट्रॉनों का प्रयोग करके प्राप्त किया जा सकता है। इसका भी परमाणु बम बनाने के लिए इस्तेमाल होता है।

न्यूट्रॉन (Neutron): परमाणु के नाभिक में निहित आवेश-रहित प्राथमिक कण। इसके जरिए नाभिकीय रिएक्टर में श्रृंखलाबद्ध अभिक्रिया संपन्न होती है।

विखंडन (Fission): एक ऐसी प्रक्रिया जिसमें भारी परमाणु (जैसे, यूरेनियम) का नाभिक लगभग दो बराबर हिस्सों में टूट जाता है। विखंडन में न्यूट्रॉनों के अलावा भारी मात्रा में ऊर्जा का उत्सर्जन होता है।

संलयन (Fusion): एक ऐसी नाभिकीय प्रक्रिया जिसमें हल्के परमाणु नाभिक आपस में जुड़कर भारी नाभिकों को जन्म देते हैं और साथ ही बड़ी मात्रा में ऊर्जा पैदा होती है।

ड्यूटेरियम (Deuterium): हाइड्रोजन का एक स्थाई समस्थानिक, जिसके नाभिक में एक न्यूट्रॉन और एक प्रोटोन होता है। यह सामान्य हाइड्रोजन से दो गुना भारी होता है। ऑक्सीजन के साथ मिलकर यह भारी पानी के अणु का निर्माण करता है।

ट्राइटियम (Tritium): हाइड्रोजन का अति भारी समस्थानिक, जिसके नाभिक में एक प्रोटोन और दो न्यूट्रोन होते हैं।

थोरियम (Thorium): परमाणु क्रमांक 90 वाला तत्व। यह रेडियोधर्मी धातु केरल के समुद्रतट की मोनाझाइट बालू में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। न्यूट्रॉन किरणन से इसे यूरेनियम-233 में बदला जा सकता है। यूरेनियम-233 एक बढ़िया नाभिकीय ईंधन है।

समस्थानिक (Isotope): एक ही तत्व के ऐसे परमाणु जो रासायनिक दृष्टि से तो एक-जैसे होते हैं, परंतु उनके द्रव्यमान कम-ज्यादा होते हैं।

श्रृंखला-अभिक्रिया (Chain Reaction): जब यूरनियम के परमाणुओं का विखंडन (Fission) होता है, तो न्यूट्रॉनों का जन्म होता है। वे न्यूट्रॉन आगे अपने पड़ोसी यूरेनियम-परमाणुओं का विखंडन करते हैं। इसे ही श्रृंखला-अभिक्रिया

संवर्धित यूरेनियम-235 का इस्तेमाल किया। पाकिस्तानी नाभिकीय कार्यक्रम के प्रमुख डॉ. अब्दुल कादीर खान ने कबूल किया है कि परमाणु बम की प्रौद्योगिकी उन्होंने विदेशों से खरीदी है। दरअसल, आज दुनिया के करीब दो दर्जन देश परमाणु बम बनाने में समर्थ हैं—इजराइल, आर्जेंटीना और इराक तो निश्चत रूप से।

हाइड्रोजन बम

महत्त्व की बात यह है कि भारत ने इस बार चार परमाणु बमों के विस्फोटों के अलावा पहली बार एक तापनाभिकीय बम यानी हाइड्रोजन बम का भी विस्फोट कर लिया। अमेरिका, रूस, इंग्लैंड और चीन के बाद हाइड्रोजन बम का विस्फोट करने वाला भारत दुनिया का पांचवां देश बन गया है। इसलिए समझना जरूरी है कि यह तापनाभिकीय बम वस्तुतः क्या बला है।

परमाणु बम में यू-235 या प्लू-239 के विखंडन की क्रिया घटित होती है। इसके विपरीत, हाइड्रोजन बम के विस्फोट में हाइड्रोजन के परमाणुओं का संलयन या संगलन (फ्यूजन) होता है। यूरेनियम के विखंडन में इसका 0.1 प्रतिशत द्रव्य ऊर्जा में बदल जाता है। मगर जब हाइड्रोजन के परमाणुओं का संलयन होकर हीलियम का निर्माण होता है, तो उनका 0.5 प्रतिशत द्रव्य ऊर्जा में बदल जाता है। स्पष्ट है कि संलयन की प्रक्रिया में बहुत ज्यादा ऊर्जा पैदा होती है।

मगर हाइड्रोजन के नाभिक में मौजूद प्रोटोनों का संलयन अति उच्च (कई करोड़ डिग्री सेल्सियस) तापमान पर ही हो सकता है। अति उच्च तापमान पर संलयन क्रिया कुछ इस प्रकार घटित होती हैः दो प्रोटोन आपस में मिलकर एक ड्यूटेरियम नाभिक का निर्माण करते हैं। ड्यूटेरियम, हाइड्रोजन का एक ऐसा समस्थानिक है जिसके नाभिक में एक प्रोटोन व एक न्यूट्रॉन होता है। फिर ड्यूटेरियम नाभिक एक प्रोटोन के साथ संगलित होकर ट्राइटियम के नाभिक का सृजन करता है (ट्राइटियम भी हाइड्रोजन का

कहते हैं।

परमाणु (Atom): किसी भी तत्व का वह सबसे छोटा कण जो रासायनिक प्रक्रिया में भाग लेता है। इसके केंद्रभाग में जो नाभिक (Nucleus) होता है उसमें प्रमुखतः धनावेशी प्रोटोन और आवेश-रहित न्यूट्रॉन होते हैं। नाभिक के चहुंओर ऋणावेशी इलेक्ट्रॉन चक्कर लगाते रहते हैं। परमाणु में प्रोटोनों और इलेक्ट्रॉनों की संख्या समान रहती है।

क्रांतिक द्रव्यराशि (Critical Mass): स्वनिर्भर श्रृंखला-अभिक्रिया को चालू रखने के लिए यूरेनियम या प्लूटोनियम की आवश्यक द्रव्यराशि।

तीव्र न्यूट्रॉन (Fast Neutron): विखंडन प्रक्रिया में पैदा हुए वे न्यूट्रॉन जिनकी ऊर्जा नहीं के बराबर कम हुई है।

भारी पानी (Heavy Water): ऐसा पानी जिसमें सामान्य हाइड्रोजन के स्थान पर भारी हाइड्रोजन (ड्यूटेरियम) होता है। पानी के 6500 भागों में एक भाग भारी पानी का होता है। रिएक्टरों में भारी पानी का इस्तेमाल विमंदक (Moderator) के रूप में होता है।

विमंदक (Moderator): रिएक्टर में स्थापित पदार्थ जो तीव्र न्यूट्रॉनों की गति को धीमा करता है। मंद न्यूट्रॉन यूरेनियम-238 में तो अवशोषित हो जाते हैं, मगर यूरेनियम-235 के नाभिक को सहजता से विखंडित कर देते हैं। सामान्य पानी, भारी पानी और ग्रेफाइट का विमंदक के रूप में इस्तेमाल होता है।

नाभिक (Nucleus): परमाणु का केंद्रभाग, जो प्रमुखतः प्रोटोन व न्यूट्रॉन कणों से बना होता है। नाभिक बहुत छोटा होता है– इसका व्यास एक सेंटीमीटर के दस लाखवें हिस्से के बराबर होता है। परमाणु का अधिकांश द्रव्य इसके नाभिक में ही होता है।

तापनाभिकीय अभिक्रिया (Thermonuclear Reaction): अति उच्च तापमान पर संपन्न होने वाली नाभिकीय संलयन (Fusion) की ऐसी क्रिया जिसमें हल्के नाभिक आपस में जुड़कर भारी नाभिकों को जन्म देते हैं और साथ ही ऊर्जा का उत्सर्जन होता है। हाइड्रोजन बम के विस्फोट में संपन्न होने वाली तापनाभिकीय अभिक्रिया एटम बम के विस्फोट का परिणाम होती है।

किलोटन बम (Kiloton Bomb): ऐसा नाभिकीय हथियार जिसकी विस्फोटक शक्ति 1000 टन टीएनटी के बराबर होती है।

मेगाटन बम (Megaton Bomb): ऐसा नाभिकीय हथियार जिसकी विस्फोटक शक्ति 1000 किलोटन टीएनटी के बराबर होती है।

— गुणाकर मुले



हान्स बेथे

ही समस्थानिक है: इसके नाभिक में एक प्रोटोन और दो न्यूट्रॉन होते हैं)। फिर इस ट्राइटियम के साथ एक और प्रोटोन के मिलने पर हीलियम-4 का सृजन होता है। हीलियम के नाभिक में दो प्रोटोन और दो न्यूट्रॉन होते हैं। दरअसल, ड्यूटेरियम और ट्राइटियम के नाभिक कई प्रकार से संयुक्त होकर हीलियम-4 का सृजन करते हैं।

चूंकि ये तमाम अभिक्रियाएं अति उच्च तापमान में ही घटित होती हैं, इसलिए इन्हें तापनाभिकीय अभिक्रियाएं (थर्मोन्यूक्लियर रिएक्शन्स) कहते हैं। इतना उच्च तापमान सूर्य व अन्य तारों की केंद्रीय भट्टियों में ही मौजूद हो सकता है। जर्मनी में पैदा हुए भौतिकीविद् हान्स अल्ब्रेख्ट बेथे (जो हिटलर की जर्मनी को छोड़कर सन् 1935 में अमेरिका में आ गए थे) ने सन् 1938 में प्रतिपादित किया था कि तारों में पैदा होने वाली ऊर्जा वस्तुतः संलयन अभिक्रिया की ऊर्जा है।

नाभिकीय विखंडन बम या परमाणु बम के विस्फोट के रूप में अब धरती पर भी अति उच्च तापमान पैदा करना संभव हो गया था। परमाणु बम की 'दियासलाई' जलाकर हाइड्रोजन में संलयन की श्रृंखलाबद्ध अभिक्रिया शुरू कर देना संभव प्रतीत हुआ। इसलिए ड्यूटेरियम और ट्राइटियम के रूप में तरल हाइड्रोजन ईंधन प्राप्त करने के प्रयास शुरू हो गए। परमाणु बम की विध्वसंक शक्ति आजमाई जा चुकी थी। उससे अधिक विध्वंसक बम बनाने की कोई आवश्यकता नहीं थी। फिर भी अमेरिका और सोवियत संघ में हाइड्रोजन बम के निर्माण का कार्य शुरू हो गया। अमेरिका ने ट्राइटियम ईंधन तैयार करके 65 टन भार का एक हाइड्रोजन बम बना लिया। फिर प्रशांत महासागर के एक प्रवालद्वीप पर 1 नवम्बर, 1952 को अमेरिका ने अपने पहले हाइड्रोजन बम का विस्फोट किया। यह विस्फोट 10,000,000 टन (10 मेगाटन) टीएनटी शक्ति का, यानी हिरोशिमा पर डाले गए 20 किलोटन के परमाणु बम से 500 गुना अधिक शक्तिशाली था। उस विस्फोट से समूचा प्रवालद्वीप विलुप्त हो गया!

सोवियत संघ भी ज्यादा पीछे नहीं रहा। उन्होंने भी 12 अगस्त, 1953 को एक हाइड्रोजन बम का सफलतापूर्वक विस्फोट किया। परमाणु बम बनाने के बाद हाइड्रोजन बम बनाने में अमेरिका को जहां साढ़े सात साल लगे, वहां सोवियत संघ को केवल चार साल लगे। विशेष बात यह है कि रूस द्वारा बनाया गया हाइड्रोजन बम इतना हल्का (पोर्टेबल) था कि उसे हवाई जहाज से ले जाया जा सकता था। अमेरिका एक पोर्टेबल हाइड्रोजन बम सन् 1954 में बना सका।

फिर उसी दौरान एक सरल तरीके से तापनाभिकीय अभिक्रिया संपन्न करके एक छोटे आकार का हाइड्रोजन बम बनाना संभव हो गया। इस अनोखी अभिक्रिया का मुख्य घटक लीथियम तत्व है। जब लीथियम-6 का समस्थानिक एक न्यूट्रॉन का शोषण करता है, तो यह हीलियम और ट्राइटियम के नाभिकों में विभक्त हो जाता है। साथ ही, इस प्रक्रिया में काफी ऊर्जा का उत्सर्जन होता है। अब कल्पना कीजिए कि लीथियम और ड्यूटेरियम (भारी हाइड्रोजन) के यौगिक का ईंधन के रूप में इस्मेमाल किया जाता है। विखंडन यानी एटमी विस्फोट में पैदा होने वाले न्यूट्रॉन कण लीथियम को तोड़कर ट्राइटियम का सृजन करेंगे। तब एटमी विस्फोट से पैदा हुए उच्च ताप में यौगिक में मौजूद ड्यूटेरियम का और लीथियम के टूटने से पैदा हुए ट्राइटियम का संलयन हो जाएगा। अन्य शब्दों में, ऊर्जा-उत्पादन की कई क्रियाएं संपन्न होंगी: पहले लीथियम का विखंडन होगा, फिर ड्यूटेरियम के साथ ड्यूटेरियम का संलयन होगा, और फिर ड्यूटेरियम और ट्राइटियम का संलयन होगा।

इन क्रियाओं में ऊर्जा की विशाल मात्रा का तो उत्सर्जन होता ही है, भारी संख्या में अतिरिक्त न्यूट्रॉनों का भी सृजन होता है। बम-निर्माताओं ने इन अतिरिक्त न्यूट्रॉनों के उपयोग के लिए एक युक्ति खोजी। इन तीव्र न्यूट्रॉनों से क्यों न यूरेनियम-238 को विखंडित किया जाए? कल्पना कीजिए एक ऐसे हाइड्रोजन बम की जिसके केंद्र में यू-235 के विखंडन विस्फोट (दियासलाई) की व्यवस्था की गई है, फिर उसके चहुंओर लीथियम ड्यूटेराइड की विस्फोटक द्रव्यराशि स्थापित की गई है, और फिर इन सबके चहुंओर यू-238 का आवरण (ब्लैंकेट) चढ़ाया गया है। यू-238 के इस आवरण को इच्छानुसार काफी मोटा बनाया जा सकता है, क्योंकि इसमें एकाएक श्रृंखलाबद्ध अभिक्रिया शुरू नहीं हो सकती।

अंतत अमेरिका ने लीथियम-ड्यूटेराइड पर आधारित हाइड्रोजन



परमाणु परीक्षण स्थल, पोकरण 1998

बम बना ही लिया। प्रशांत महासागर के मार्शल द्वीप-समूह के बिकिनी स्थान पर 1 मार्च, 1954 को 3 बजे तड़के इस नए बम का परीक्षण हुआ। यह हाइड्रोजन बम करीब 15 मेगाटन शक्ति का था। इस महाविस्फोट में पैदा हुए रेडियोधर्मी कणों की दूर-दूर तक वर्षा हुई। उसी क्षेत्र में मौजूद 'लकी ड्रैगन' नामक जापानी मत्स्य-नौका में सवार 23 मछुआरे भी रेडियोधर्मी वर्षा की चपेट में आ गए। बाद में उनमें से एक, रेडियोमैन, कुबोयामा की मृत्यु हो गई और शेष सभी का स्वास्थ्य जीवनभर के लिए चौपट हो गया।

सन् 1954 में अमेरिका, सोवियत संघ और इंग्लैंड में हाइड्रोजन बम अधिकाधिक संख्या में बनते गए। सन् 1967 में, परमाणु बम बनाने के केवल तीन साल बाद, चीन ने भी अपना हाइड्रोजन बम बना लिया। सोवियत संघ ने 50 से 100 मेगाटन तक शक्ति के हाइड्रोजन बमों के परीक्षण किए हैं। अमेरिका ने भी ऐसे और इससे भी अधिक शक्तिशाली बमों का निर्माण किया है।

वर्तमान बीसवीं सदी के आठवें दशक में एक नए किस्म के तापनाभिकीय या हाइड्रोजन बम का विकास हुआ। इसमें विस्फोट का प्रभाव न्यूनतम और विकिरण का प्रभाव महत्तम रहता है। परिणामतः ऐसे बम में संपत्ति को तो कम क्षति पहुंचती है, परंतु जनहानि बहुत अधिक होती है। इन्हें न्यूट्रॉन बम का नाम दिया गया है।

जैसा कि पहले बताया गया है, 11 मई 1998 को पोकरण में किए गए तीन बमों के विस्फोट में एक हाइड्रोजन बम था। चूंकि तीनों बमों का विस्फोट एक साथ हुआ, इसलिए अकेले हाइड्रोजन बम का विस्फोट 45 किलोटन से कुछ कम का भी हो सकता है। यह नहीं बताया गया है कि यह हाइड्रोजन बम ड्यूटेरियम-ट्राइटियम के ईंधन पर आधारित था अथवा लीथियम-ड्यूटेराइड के ईंधन पर। जो भी हो, 40-50 किलोटन शक्ति के हाइड्रोजन बम का निर्माण एक नई उपलब्धि मानी जाएगी। दूसरे देशों में ज्यादातर एक से अधिक मेगाटन शक्ति के ही हाइड्रोजन बम बनाए गए हैं।

दूसरे महायुद्ध के दौरान हिरोशिमा और नागासाकी पर हवाई जहाजों से परमाणु बम डाले गए थे। अब इन्हें प्रेषित करने के लिए अंतरमहाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्रों का इस्तेमाल होता है। अमेरिका और रूस ने ऐसे कई किस्म के शक्तिशाली प्रक्षेपास्त्रों का निर्माण कर लिया है। चीन ने भी 11,000 किलोमीटर दूरी तक मार करने वाले प्रक्षेपास्त्रों का विकास कर लिया है। भारत में अब तक जिन प्रक्षेपास्त्रों का परीक्षण हुआ है वे 2500 किलोमीटर की दूरी तक मार कर सकने में समर्थ होंगे। पाकिस्तान में बनाया गया 'गोरी' नामक प्रक्षेपास्त्र 1500 किलोमीटर तक पहुंच सकता है।

कुल मिलाकर यही है दुनिया में आज तक विकसित किए महाविध्वंसक नाभिकीय अस्त्रों और प्रक्षेपास्त्रों की स्थिति।

['आविष्कार' जून 1998 अंक से पुनर्प्रकाशित]

खुल गई है मानव-जीवन की कुंडली

— गुणाकर मुले

सावधान! वैज्ञानिकों ने अब मानव की असली 'जन्म-कुंडली' को जान लिया है, इसका 'प्रथम प्रारूप' तैयार कर लिया है। समूची मानव-जाति का अतीत, वर्तमान और भविष्य इस कुंडली की आणविक संरचना में सूत्रबद्ध है। और, वैज्ञानिक अब मानव-जीवन की इस कुंडली में रद्दोबदल करने में समर्थ हो रहे हैं, इसके लिए जैव-तकनीकी की विधियां विकसित कर रहे हैं।

परंतु परमाणु ऊर्जा की तरह जैव-तकनीकी के भी दो पहलू हैं – कल्याणकारी और महाविनाशकारी भी। इस 'मानव-कुंडली' की जानकारी और जैव-तकनीकी के तरीकों से, जहां एक तरफ, वंशानुगत रोगों से मुक्ति पाई जा सकती है, नई-नई दवाएं, रसायन और प्रोटीन आदि पैदा किए जा सकते हैं, समस्त मानव-जाति को सुख-समृद्धि और दीर्घायु प्रदान की जा सकती है; वहीं दूसरी तरफ, इस 'मानव-कुंडली' का उद्घाटन समूची मानव-जाति के लिए परमाणु बमों से भी कहीं अधिक प्रलयकारी सिद्ध हो सकता है।

वैज्ञानिकों ने प्रकृति-प्रदत्त इस 'जीवन-कुंडलिनी' को छेड़ना, इसमें रद्दोबदल करना, शुरू कर दिया है। तंत्र या हठयोग की भाषा में कहें तो मानव-जाति की असली कुंडलिनी को अब, हमारे समय में, पहली बार खोजा गया है, 'जगाया' जा रहा है। मनुष्य अब, प्रकृति की दूसरी प्रजातियों में ही नहीं, स्वयं अपनी मानव-प्रजाति में भी आमूल परिवर्तन करने में समर्थ बनता जा रहा है।

ऐसी स्थिति में अपनी ही 'जीवन-कुंडलिनी' की जानकारी से हम अनभिज्ञ रहें, यह कैसे हो सकता है? हमें जानना होगा, समझना होगा, 'जीवन-कुंडली' में परिवर्तन करने में समर्थ बन रही जैव-तकनीकी पर सभ्य समाज का सख्त नियंत्रण स्थापित करना होगा। प्रस्तुत है, मानव-जीवन की 'कुंडलिनी' के विविध आयामों का अर्थपूर्ण और विचारोत्तेजक विवेचन– 'विकासक्रम' और 'शब्दावली' सहित। [यह लेख 'आविष्कार' अगस्त 2000 अंक में प्रकाशित हुआ था।]

प्रतिस्पर्धा बुरी चीज नहीं है, बशर्ते कि वह स्वस्थ हो, कल्याणकारी भावना पर आधारित हो। दूसरे महायुद्ध के दौरान अमेरिका और जर्मनी के बीच एटम बम बनाने के लिए होड़ लगी थी, और उसमें अंततः अमेरिका की विजय हुई थी। उस होड़ के कई दुष्परिणाम हम आज भी भुगत रहे हैं मानव को चंद्रतल पर उतारने के लिए अमेरिका और रूस (भूतपूर्व सोवियत संघ) में होड़ लगी थी। वह दो देशों के बीच काफी हद तक एक स्वस्थ प्रतिस्पर्धा ही थी।

मगर मानव जीनोम के प्रारंभिक प्रारूप को सर्वप्रथम प्रस्तुत कर देने के लिए जो प्रतिस्पर्धा चली वह एकदम अलग किस्म की है। पहली बात तो यही है कि यह मुख्यतः एक ही देश, अमेरिका का भीतरी मामला है। जीनोम अनुक्रमण (Genome Sequencing) के उद्घाटन में जुटा एक वैज्ञानिक-दल सार्वजनिक धन पर आश्रित है और दुनिया के छह देशों और 16 प्रयोगशालाओं में उसका विस्तार है, हालांकि उसमें अमेरिका की हिस्सेदारी ही सर्वोपरि है। दूसरा दल, जो विशुद्ध व्यापारी मकसद से अमेरिका में महज दो साल पहले अस्तित्व में आया, निजी धन पर आश्रित है। पिछले दो वर्षों से इन दो दलों में जबरदस्त प्रतिस्पर्धा चली है और मीडिया ने इसे ओलंपिक होड़ में बदल डाला

है। एक-दूसरे पर भद्दे आरोप लगाए गए। निजी कंपनी को अपने शेयरों के उतार-चढ़ाव भी देखने पड़े। अंत में जब स्पष्ट होने लगा कि निजी कंपनी वाला दल ही सबसे पहले जीनोम अनुक्रमण का प्रारूप प्रस्तुत कर देने जा रहा है, तो अमेरिकी शासन ने दोनों में 'सुलह' करा दी और आनन-फानन में 26 जून 2000 को अमेरिका के राष्ट्रपति ने घोषणा कर दी कि जीनोम अनुक्रमण का 'प्रथम कच्चा प्रारूप' तैयार हो गया है।

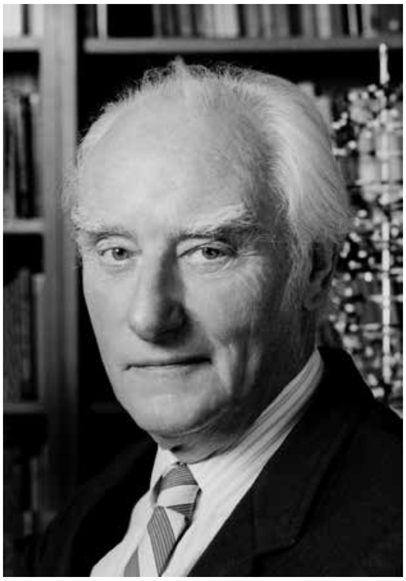
इस सार्वजनिक घोषणा का असली अर्थ क्या है? पहली बात तो यही है कि जीनोम अनुक्रमण का कार्य अभी पूरा नहीं हुआ है। मुश्किल से 85 प्रतिशत जीनोम प्रारूप ही तैयार हुआ है, वह भी कच्चे रूप में। अभी तो यह भी स्पष्ट नहीं हुआ है कि मानव जीनोम में कुल कितने जीन हैं– 35,000 या 1,00,000 या 1,20,000? एक तरफ यह कहा जा रहा है कि मानव जीनोम संबंधी सारी वैज्ञानिक जानकारी सबके लिए उपलब्ध की जाएगी, मगर दूसरी तरफ अमेरिकी वैज्ञानिक अपने द्वारा खोजे गए अलग-अलग जीनों का पेटेंट लेने में जुटे हुए हैं। जिस अनुसंधान-कार्य में निजी धन लगा हो, क्या उसे सार्वजनिक किया जाएगा? संदेह है।

मामला ग्रह-नक्षत्रों पर आधारित व्यक्तिगत 'जन्म-कुंडली' का नहीं है, समूची मानव-जाति का भविष्य निर्धारित करने वाली वास्तविक कुंडली का है। इसके बारे में जो भी जानकारी उपलब्ध होगी उस पर एक देश का या एक समुदाय-विशेष का नहीं, समूची मानव-जाति का अधिकार होना चाहिए। इस मानव-कुंडली में मौजूद जानकारी का उपयोग करके मानव-जाति को बेहतर बनाया जा सकता है, बदला जा सकता है, और बरबाद भी किया जा सकता है! इसलिए सभी को यह जानकारी अवश्य होनी चाहिए कि 'मानव जीनोम' या 'मानव कुंडली' वस्तुतः क्या है और इसके उद्‌घाटन के लिए किस तरह के प्रयास जारी हैं। पृष्ठभूमि की भी थोड़ी जानकारी जरूरी है।

विज्ञान की एक सबसे प्राचीन और प्रसिद्ध पत्रिका है 'नेचर', जो लंदन से प्रति-सप्ताह प्रकाशित होती है। इसमें 'संपादक के नाम पत्र' के अंतर्गत नए आविष्कारों के संक्षिप्त विवरण भी बड़ी संख्या में प्रकाशित होते हैं, और दुनिया भर के वैज्ञानिक पाठक सबसे पहले प्रायः इन्हीं संक्षिप्त विवरणों को पढ़ते हैं।

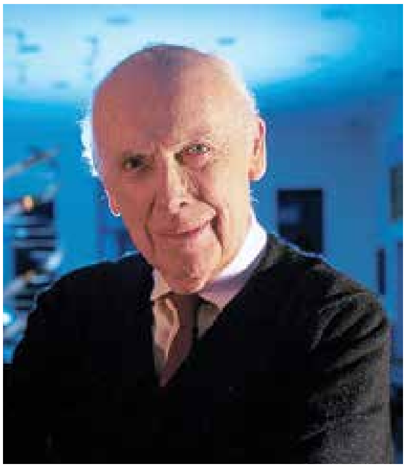
जीवन की कुंडलिनी

अप्रैल 1953 की बात है। एक नई खोज का विवरण, एक पृष्ठ से भी कुछ कम स्थान में, 'नेचर' पत्रिका में प्रकाशित हुआ। इसके लेखक थे, कैम्ब्रिज की सुप्रसिद्ध केवेंडिश प्रयोगशाला के दो वैज्ञानिक– जेम्स वाट्‌सन और फ्रांसिस क्रिक। विज्ञान-जगत में तत्काल इन दोनों वैज्ञानिकों की कीर्ति फैल गई। बाद में, सन् 1962 में, इन्हें अपनी इस खोज के लिए नोबेल पुरस्कार भी मिला। (वस्तुतः **कु. रोसालिंड फ्रैंकलिन** भी इस नोबेल पुरस्कार की हकदार थी क्योंकि सन् 1952 में उसके द्वारा प्राप्त किए गए एक एक्स-रे विवर्तन (X-ray Diffraction) छायाचित्र को, कहा जा सकता है कि 'चोरी' से, हासिल करने के बाद ही वाट्‌सन और क्रिक अपनी खोज को पूर्ण कर पाए थे। रोसालिंड की 1958 में कैंसर से मृत्यु हो गई और नोबेल पुरस्कार मरणोपरांत नहीं दिए जाते।)



फ्रांसिस क्रिक

'नेचर' में प्रकाशित वह पत्र-सूचना इतनी प्रसिद्ध क्यों हुई? उसके लेखकों ने कौन-सी बड़ी खोज की थी? वाट्‌सन और क्रिक ने बड़ी नम्रता से सूचना की शुरुआत की थी– "हम डीएनए के लिए एक संरचना का सुझाव पेश करना चाहते हैं।" और, उन्होंने सुझाया कि डीएनए की रचना उभय कुंडलिनी (Double Helix) के आकार की होनी चाहिए, और इसके लिए प्रमाण पेश किए। वैज्ञानिक जगत ने उनके सुझाव को फौरन स्वीकार कर लिया। जीव-विज्ञान के क्षेत्र में वर्तमान सदी की एक सबसे बड़ी खोज के साथ एक नए अध्ययन अणु-जैविकी (Molecular Biology) का श्रीगणेश हुआ। अन्य शब्दों में, जीव-जगत का अन्वेषण अणु की संरचना के स्तर पर आरंभ हुआ।



जेम्स वाट्‌सन

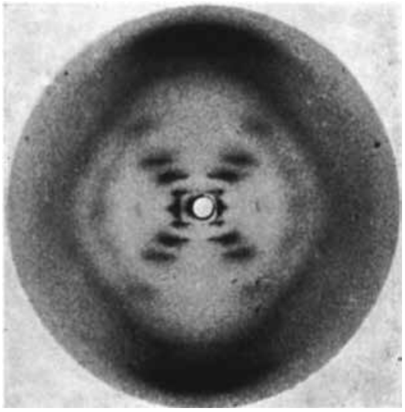
लेकिन यह डीएनए क्या बला है? और, यह कुंडलिनी तंत्र और हठयोग के साधकों द्वारा जगाई जाने वाली कुंडलिनी शक्ति तो नहीं है? बिल्कुल नहीं। यहां कुंडलिनी से हमारा मतलब एक विशिष्ट भौतिक संरचना से है, एक विशिष्ट अणु से है।

जीवन क्या है? एक जीव अपने-जैसे जीवों का सृजन किस प्रकार करता है? माता-पिता और संतान में काफी साम्य क्यों होता है? सहस्राब्दियों से मानव इन तथा ऐसे अनेक सवालों के बारे में सोचता आया है, परंतु इनके कुछ संतोषजनक उत्तर हमें आज ही पहली बार मिल रहे हैं। ये उत्तर हमें मिल रहे हैं **डीएनए** की विशिष्ट कुंडलिनी-नुमा संरचना में।



रोसालिंड फ्रैंकलिन

वह कौन-सी चीज है, जिसके जरिए एक पीढ़ी की विशेषताएं दूसरी पीढ़ी में स्थानांतरित होती हैं? रक्त? कोशिकाएं? गुणसूत्र? या इनसे भी आगे बढ़कर कोई अधिक सूक्ष्म और अधिक विशिष्ट वस्तु? आज हम जानते हैं कि वह भौतिक सारवस्तु जिसमें जीव की समस्त विशेषताएं सूत्रबद्ध रहती हैं डीएनए (Deoxiribonucleic acid) का अणु है।



डीएनए अणु का रोसालिंड फ्रैंकलिन द्वारा लिया गया एक्स-रे विवर्तन छायाचित्र

एक अणु? यह कैसे संभव है? एक अणु में समस्त जीव-जगत की सारी विशेषताएं कैसे सूत्रबद्ध हो सकती हैं? परंतु यह कोई साधारण अणु नहीं है, यह एक महाअणु है। इसमें हजारों-लाखों परमाणु उभय कुंडलिनी की विशिष्ट संरचना में संयोजित रहते हैं। विशिष्ट द्रव्य और विशिष्ट संरचना के संयोजन से जीवन की कुंडलिनी का सृजन होता है।

कोशिकाओं से हम परिचित हैं। कीट-पतंगे, पेड़-पौधे, पशु-मानव, सभी के अंग-प्रत्यंग कोशिकाओं से बने हैं। कोशिका के भीतर एक केंद्रक (Nucleus) होता है। केंद्रक के भीतर गुणसूत्र (Chromosome) होते हैं। प्रत्येक प्रजाति की कोशिका में गुणसूत्रों की संख्या प्रायः सुनिश्चित रहती है। जैसे, मनुष्य की कोशिका में गुणसूत्रों के 23 जोड़े होते हैं। ये गुणसूत्र डीएनए द्रव्य से बने होते हैं। संक्षेप में, यही है डीएनए अणु का स्थान-परिचय।

बीसवीं सदी के पांचवें दशक तक यह स्पष्ट हो गया था कि डीएनए ही गुणसूत्रों का निर्माण करने वाला, आनुवंशिक विशेषताओं को वहन करने वाला, बुनियादी द्रव्य है। दरअसल, आनुवंशिकता के अध्ययन की नींव ग्रेगोर मेंडेल (1822-84 ई.) ने डाली थी। मटर के पौधों में संकरण करके मेंडेल ने 1866 ई. में आनुवंशिकता के अपने नियम प्रतिपादित किए थे, पर उन नियमों का पुनरुद्धार 1900 ई. में ही संभव हुआ। अतः हम कह सकते हैं कि आनुवंशिकता का वास्तविक अध्ययन बीसवीं सदी के आरंभ से शुरू हुआ। इस वर्ष इस अध्ययन-अन्वेषण की जन्म-शताब्दी मनाई जा सकती है।

जीवों का आनुवंशिक अणु

पिछली सदी से ही वैज्ञानिक डीएनए से परिचित रहे हैं पर मेंडेल या किसी अन्य को उस समय जानकारी नहीं थी कि यह डीएनए ही बुनियादी आनुवंशिक द्रव्य है। ब्रिटिश वैज्ञानिक फ्रेड ग्रिफिथ ने पहली बार 1926 में सुझाया कि डीएनए आनुवंशिक द्रव्य है। उसी वर्ष अमेरिकी जीववेत्ता हरमान मुल्लेर ने एक्स-किरणों से फलमक्खी में उत्परिवर्तन (Mutation) प्राप्त किया। फिर, दूसरे महायुद्ध के दौरान यह भी स्पष्ट हो गया कि डीएनए के घटक (जीन) ही प्रोटीनों के संश्लेषण को नियंत्रित करते हैं।

इस प्रकार, 1950 तक यह स्पष्ट हो गया था कि कोशिका के केंद्रक में दो प्रकार के अम्ल होते हैं– डीएनए और आरएनए (Ribonucleic Acid)। गुणसूत्र मुख्यतः डीएनए से बनते हैं। डीएनए के घटकों (जीनों) में सूत्रबद्ध या कूटबद्ध (Coded) सूचनाएं आरएनए के सहयोग से केंद्रक के बाहर के कोशिका-द्रव्य में पहुंचती हैं, जहां इन सूचनाओं के आधार पर 20 एमिनो अम्लों का विविध प्रकार से संयोजन होकर प्रोटीनों (एंजाइमों) का सृजन होता है। प्रोटीन ही समस्त जीव-जगत की बुनियादी ईंटें हैं।

संकरण के जरिए पेड़-पौधों और पशुओं में नई-नई जातियां

पैदा की जा रही थीं। विकिरण और रसायनों से कृत्रिम उत्परिवर्तन के भी प्रयोग किए जा रहे थे। हिरोशिमा और नागासाकी की विनाशलीला में आनुवंशिक उत्परिवर्तन का नग्न तांडव भी खेला जा चुका था। क्रमविकास, उत्परिवर्तन, वंशानुगत विशेषताओं का वहन, सब कुछ डीएनए द्रव्य से निर्मित गुणसूत्रों के घटकों (जीनों) की संरचना के स्तर पर होता है, यह स्पष्ट हो रहा था। संक्षेप में, जीवन के सारे रहस्य इसी डीएनए की कुंडलिनी में निहित थे। सन् 1953 में वाट्सन और क्रिक ने इसी संरचना की खोज की थी।

जीवन की घुमावदार सीढ़ी

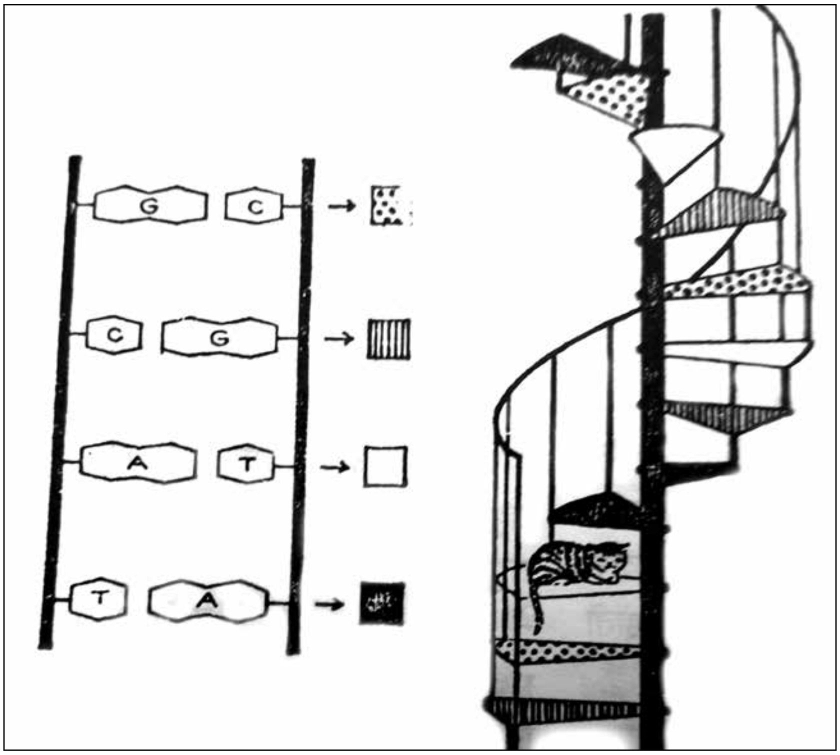
डीएनए की रचना ऊंची इमारत के पिछवाड़े में प्रायः लगाई जाने वाली घुमावदार सीढ़ी की तरह है। अन्य शब्दों में, कुंडलिनी (Helix) की तरह है। कल्पना कीजिए की यह घुमावदार सीढ़ी रस्सों से बनी है। तब इस सीढ़ी के दो रस्से कुंडलिनी की तरह एक-दूसरे से लिपटे जान पड़ेंगे। डीएनए की कुंडलिनी में दो लंबी लड़ियां होती हैं, इसलिए इसे उभय या युग्म कुंडलिनी (double helix) कहते हैं। जो आड़े डंडे इस कुंडलिनी-नुमा सीढ़ी की दोनों लंबी लड़ियों को जोड़ते हैं वे चार किस्म के क्षारकों (bases) से बने होते हैं: ऐडेनीन (A), ग्वानीन (G), साइटोसीन (C) और थायमीन (T)। इस कुंडलिनी-नुमा सीढ़ी की दोनों लंबी लड़ियां शर्करा और फास्फेट की श्रृंखलाओं से बनी होती हैं।

आरएनए की कुंडलिनी में एक अकेली लड़ी होती है, परंतु इसमें भी डंडों के रूप में चार ही क्षारक होते हैं; अंतर केवल इतना ही है कि इसमें थायमीन के स्थान पर यूरेसिल (uracil) होता है।

और एक बात– डीएनए की इस उभय कुंडलिनी की दोनों लड़ियां विपरीत दिशाओं में अग्रसर रहकर संपूरक क्षारकों के डंडों से आपस में जुड़ी रहती हैं। जैसे, डीएनए में ऐडेनीन, थायमीन के साथ जुड़ता है (आरएनए में थायमीन का स्थान यूरेसिल ले लेता है) और ग्वानीन, साइटोसिन के साथ। ये क्षारक क्षीण हाइड्रोजन आबंध से परस्पर जुड़े रहते हैं। इन क्षारकों का अनुक्रम आनुवंशिकता के अलग-अलग गुणों को निर्धारित करता है।

संक्षेप में, डीएनए उभय कुंडलिनी के आकार की एक विशिष्ट आणविक संरचना है। सन् 1953 में इस संरचना का उद्‌घाटन जीव-विज्ञान के इतिहास की एक महान घटना है। इसी संरचना में जीवन की संहिता सूत्रबद्ध है। इस संहिता की अपनी एक कूटभाषा है। इस भाषा की वर्णमाला के चार अक्षर हैं– चार क्षारक, जिनमें से तीन वर्णों या क्षारकों के मेल से इस कूट भाषा का एक संयुक्ताक्षर बनता है। और ऐसे अनेकानेक संयुक्ताक्षरों से इस भाषा के सार्थक शब्द बनते हैं। कुल चार वर्णों में से तीन-तीन वर्णों को लेकर संयुक्ताक्षर बनाए जाएं, तो ऐसे कुल 64 संयुक्ताक्षर बनते हैं। डीएनए की कुंडलिनी में आनुवंशिक संहिता की कूटभाषा (Genetic code) इन्हीं 64 संयुक्ताक्षरों से निर्मित है। प्रत्येक संयुक्ताक्षर यानी डीएनए के क्षारकों के एक त्रिक (Triplet) से एक एमिनो अम्ल का निर्धारण होता है।

मगर यह डीएनए या कुंडलिनी स्वयं में 'जीवन' नहीं है। इस कुंडलिनी की कूटभाषा का जब एक दूसरी भाषा में रूपांतरण होता है, तभी जीवन की, जीवन के घटकों की, अभिव्यक्ति होती



डीएनए या कहिए कि जीवन के चार 'पग'। एक श्रृंखला का छोटा क्षारक सदैव दूसरी श्रृंखला के बड़े क्षारक के साथ जुड़ता है। इस तरह विभिन्न किस्म के चार 'पग' प्राप्त होते हैं। सभी समान लंबाई के। डीएनए कुंडलिनी के इन्हीं चार 'पगों' के विभिन्न क्रमों से नाना किस्म के जीव-जगत का सृजन होता है।

है। प्रकृति में कोई 20 एमिनो अम्लों का अस्तित्व है। इन्हीं बीस एमिनो अम्लों के विविध प्रकार के संयोजनों से सारे प्रोटीनों का सृजन होता है। अन्य शब्दों में, प्रोटीनों की इस भाषा में 20 वर्ण या अक्षर हैं। डीएनए की कुंडलिनी की कूटभाषा का जब एमिनो अम्लों की भाषा में रूपांतरण होता है, तब कोशिकाओं के भीतर प्रोटीनों का सृजन होता है। सन् 1953 में डीएनए की संरचना स्पष्ट हो जाने के बाद ही अनेक वैज्ञानिकों के प्रयासों से इस आनुवंशिक कुंडलिनी का, कुंडलिनी की कूटभाषा से प्रोटीनों की स्पष्ट भाषा में रूपांतरण की इस यांत्रिकी का, स्पष्टीकरण संभव हो पाया। इस स्पष्टीकरण में केवल जीववेत्ताओं का ही नहीं, रसायनज्ञों, गणितज्ञों, भौतिकीविदों और आनुवंशिकीविदों का भी भरपूर सहयोग मिला है। फ्रांसिस क्रिक मूलतः एक भौतिकीविद हैं और भारत में जन्मे

आनुवंशिकी का विकासक्रम



ग्रेगोर मेंडेल

1866: ऑस्ट्रियाई (चेक) पादरी ग्रेगोर मेंडेल (1822-84 ई.) ने पौधों के संकरण और मटर के पौधों के वंशानुगत गुणों से संबंधित अपने परीक्षणों का विवरण प्रकाशित किया। परंतु प्रभावी और अप्रभावी जीनों के सिद्धांत वाला मेंडेल का यह प्राथमिक शोधकार्य 1900 ई. में पुनः खोजे जाने के बाद ही आनुवंशिकी genetics की नींव पड़ी।

1871: स्विस जैवरसायनज्ञ योहान्न फ्रीडरिख मिशेर (1844-95 ई.) ने कोशिका के केंद्रक में न्यूक्लीइन (जिसे 1889 ई. में न्यूक्लीक अम्ल का नाम दिया गया) की खोज की।

1888: जर्मन वैज्ञानिक हैनरिख फॉन वाल्डेयर ने Chromosome (गुणसूत्र) शब्द चलाया।

1900: जर्मन वनस्पतिविद् कार्ल कोरेंस ने उत्परिवर्तन (mutation) से संबंधित मेंडेल के शोधकार्य की पुनः खोज की और इस विषय का अपना अनुसंधान भी प्रकाशित किया। उसी वर्ष दो अन्य वैज्ञानिकों ने भी उसी तरह का स्वतंत्र शोधकार्य किया और मेंडेल के शोधकार्य की पुनः खोज की। आनुवंशिकी की विधिवत स्थापना हुई।

1901: अमेरिकी जीवविज्ञानी क्लारेंस मैकक्लंग ने लिंग निर्धारक गुणसूत्र की खोज की।

1905: ब्रिटिश वैज्ञानिक विलियम बाटेसन (1861-1926 ई.) ने genetics (आनुवंशिकी) विज्ञान का नामकरण किया।

1909: डेनमार्क के वैज्ञानिक विलहेल्म योहानसेन ने आनुवंशिकता के संवाहक के लिए gene (जीन) शब्द प्रस्तावित किया। genotype (जीनप्ररूप) और phenotype (लक्षणप्ररूप) शब्द भी उन्होंने ही स्थापित किए।

1910: अमेरिकी आनुवंशिकीविद् टॉमस हंट मॉर्गन (1866-1945 ई.) ने फलमक्खी पर परीक्षण करके आनुवंशिकता में गुणसूत्रों की भूमिका प्रमाणित की, उत्परिवर्तन का सिद्धांत स्थापित किया और आनुवंशिकता की यांत्रिकी को जानने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। मॉर्गन ने स्पष्ट किया कि कुछ वंशागत गुण लिंग-निर्धारित हैं और इन गुणों को नियंत्रित करने वाले जीन गुणसूत्रों में मौजूद हैं।

1911: मॉर्गन और सहयोगियों ने पहली बार गुणसूत्रों का मैप प्रस्तुत किया।

1926: अमेरिकी आनुवंशिकीविद् हरमान मुल्लेर (1890-1967 ई.) ने एक्स-किरणों से फलमक्खी में उत्परिवर्तन लाने में सफलता प्राप्त की।

1941: जॉर्ज बीडल और एडवर्ड टाटम ने 'एक जीन– एक एंजाइम' की धारणा प्रस्तुत की।

1944: प्रमाणित हुआ कि डीएनए (DNA=Deoxyriboncleic acid) आनुवंशिकता की सारवस्तु है।

1952: अमेरिकी जीवविज्ञानी अल्फ्रेड हेर्शे ने प्रमाणित किया कि bacteriophage T2 (जीवाणुभोजी टी2) का आनुवंशिक द्रव्य डीएनए है।

हरगोबिंद खुराना मूलतः एक रसायनज्ञ हैं।

जीवन के अभिनय की रंगभूमि

संक्षेप में और सरल भाषा में वस्तुस्थिति इस प्रकार है: जीवन के इस सारे अभिनय की रंगभूमि है कोशिका। कोशिका के केंद्रक में दो किस्म के अम्ल हैं– डीएनए और आरएनए। डीएनए की रचना उभय कुंडलिनी के आकार की है। गुणसूत्र डीएनए से ही बने होते हैं। डीएनए की प्रत्येक लड़ी न्यूक्लिओटाइडों की कड़ियों से बनती है। चार क्षारक चार किस्म के न्यूक्लिओटाइडों को जन्म देते हैं। डीएनए कुंडलिनी के एक पूरे घुमाव में दस न्यूक्लिओटाइड होते हैं। डीएनए की कुंडलिनी को सीधा किया जाए, तो इसकी लंबाई दो मीटर से अधिक नहीं होगी। मगर इस डीएनए कुंडलिनी की चौड़ाई सिर्फ 20 ऐंग्स्ट्रम

1952: ब्रिटिश रसायनज्ञ रोसालिंड फ्रैंकलिन (1920-58 ई.) द्वारा प्राप्त किए गए डीएनए के एक्स-रे विवर्तन चित्रों से स्पष्ट हुआ कि इस अणु की संरचना कुंडलिनी (helix) के आकार की है।

1953: फ्रैंकलिन रोसालिंड के चित्रों का उपयोग करके अमेरिकी वैज्ञानिक जेम्स वाट्सन (जन्मः 1928 ई.) और ब्रिटिश वैज्ञानिक फ्रांसिस क्रिक (जन्म 1916 ई.) ने जाना कि डीएनए अणु की संरचना उभय या युग्म कुंडलिनी (double helix) के आकार की है।

1956: स्पेनी जैवरसायनज्ञ सेवेरो ओचोओ ने आरएनए (RNA = Ribonucleic acid) का संश्लेषण किया और अमेरिकी जैवरसायनज्ञ आर्थर कोर्नबर्ग ने डीएनए (DNA) का संश्लेषण किया, यानी इन्हें कृत्रिम रूप से तैयार किया।

1961: फ्रांसीसी जीवविज्ञानी फ्रांस्वां याकब और जैक मोनो ने स्पष्ट किया कि किस प्रकार कोशिका में आनुवंशिक सूचनाएं जीनों से प्रोटीन संश्लेषण के स्थान पर पहुंच जाती हैं।

1962: फ्रांसिस क्रिक ने आनुवंशिक कूट (genetic code) का स्पष्टीकरण करके प्रमाणित किया कि डीएनए के क्षारकों (bases) के एक त्रिक (triplet) से एक एमिनो अम्ल का निर्धारण होता है।

1966: भारत में जन्मे हरगोबिंद खुराना (जन्मः 1922 ई.) और अमेरिकी जैवरसायनज्ञ मार्शल निरेनबर्ग के शोधकार्य से संपूर्ण आनुवंशिक कूट (genetic code) की स्थापना हुई।

1969: जोनाथन बेकविथ और साथियों ने पहली बार एक जीन को पृथक किया।

1970: हरगोबिंद खुराना और साथियों ने पहली बार एक कृत्रिम जीन का सृजन किया।

1972: जीन क्लोनिंग के प्रथम प्रयोग।

1976: हरगोबिंद खुराना और साथियों ने पहली बार एक जीवाणु (bacterium) में कृत्रिम जीन रोपित किया और वह सामान्य रूप से काम करता देखा गया।

1977: एक विषाणु (virus SV40) की पूर्ण आनुवंशिक संरचना पता लगाने में वैज्ञानिकों को सफलता मिली।

1977: डीएनए अनुक्रमण (DNA sequencing) की तकनीक विकसित की गई।

1983: एड्रयू मुर्रे और जैक स्जोस्तक ने प्रथम कृत्रिम गुणसूत्र का निर्माण किया।

1984: इंग्लैंड के अलेक जेफ्रीज ने व्यक्तियों की अलग पहचान के लिए डीएनए के विशिष्ट अनुक्रमों का उपयोग करके 'डीएनए फिंगर प्रिंटिंग' की तकनीक विकसित की।

1988: मानव जीनोम परियोजना (Human Genome Project=HGP) को अमेरिका में स्वीकृति।

1990: पंद्रह वर्षों में पूरी की जाने वाली अंतर्राष्ट्रीय मानव जीनोम परियोजना की विधिवत शुरुआत।

1993: जीन चिकित्सा के जरिए चुहिया की पुटीय तंतुमयता (cystic fibrosis) व्याधि को दूर किया गया।

1995: दो जीवाणुओं और जीनोम कूट उद्घाटित किए गए।

1998: प्रथम बहुकोशिकीय प्राणी-नामक कृमि का जीनोम-कूट खोलना संभव हुआ।

1999: प्रथम मानव गुणसूत्र नं. 22 का अनुक्रमण संभव हुआ।

2000: मानव जीनोम का प्रथम प्रारूप (first draft of human genome) प्रस्तुत किया गया।

— गुणाकर मुले

और दस न्यूक्लिओटाइडों की लंबाई 34 ऐंग्स्ट्रम होती है। स्मरण रहे कि 10 करोड़ ऐंग्स्ट्रम लंबाई एक सेंटीमीटर के बराबर होती है!

डीएनए की कुंडलिनी के न्यूक्लिओटाइडों के जिस एक विशिष्ट क्रम से या खंड से एक विशिष्ट प्रोटीन का सृजन होता है उसे ही जीन (Gene) कहते हैं। प्रोटीनों के सृजन की इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम डीएनए का अणु दो लड़ियों में विभक्त हो जाता है। फिर केंद्रक के भीतर ही आरएनए के न्यूक्लिओटाइड एक विशिष्ट क्रम में डीएनए की इस विभक्त लड़ी के साथ जुड़ जाते हैं, और इस प्रकार संदेशवाहक आरएनए (messenger RNA) का निर्माण करते हैं। तदनंतर संदेशवाहक आरएनए की लड़ी डीएनए की लड़ी से अलग हो जाती है और केंद्रक के बाहर कोशिकाद्रव्य (cytoplasm) में पहुंच जाती है। यहां एक अन्य किस्म के स्थानांतरक आरएनए (transfer RNA) विशिष्ट अमिनो अम्लों को वहन करके एक विशिष्ट क्रम में इन्हें संदेशवाहक आरएनए लड़ी के साथ जोड़ देते हैं।

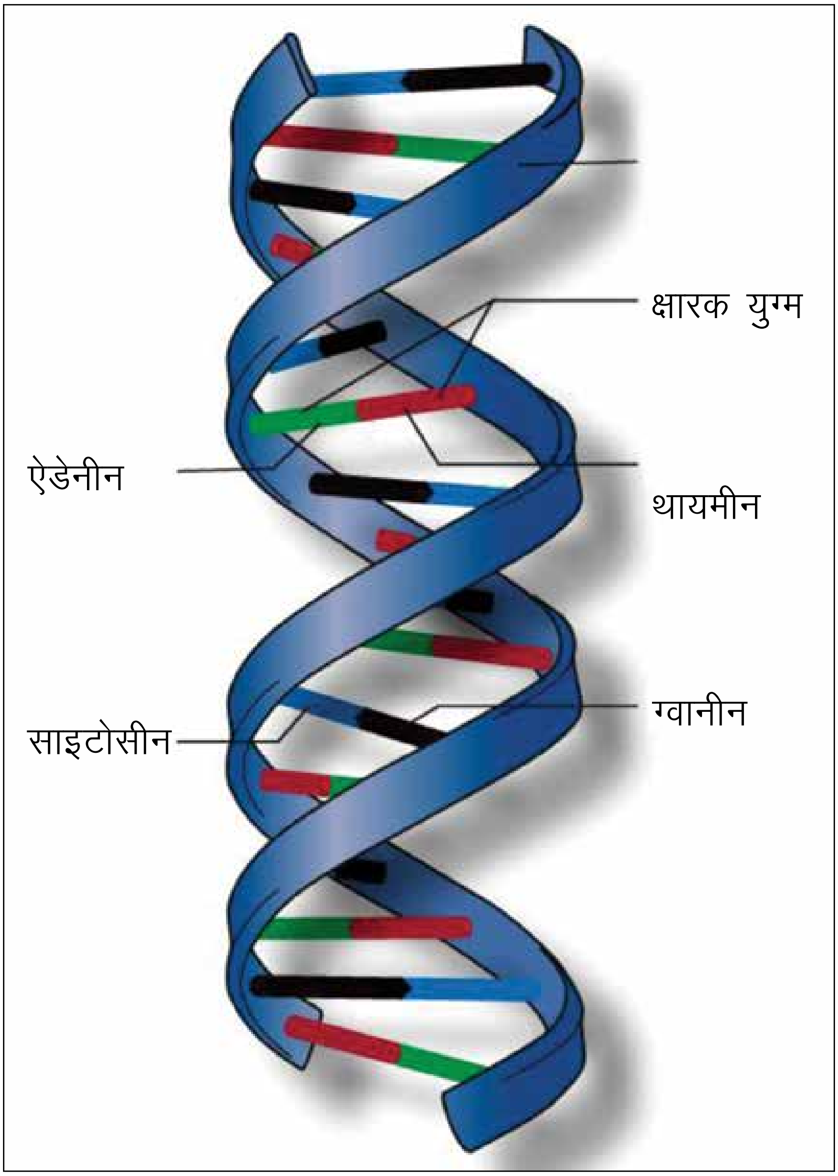


डॉ. हरगोबिंद खुराना

इस प्रकार, एमिनो अम्लों के संयुक्त होने पर प्रोटीन का अणु तैयार हो जाता है।

कुल बीस एमिनो अम्ल एक विशिष्ट क्रम से जुड़कर सैकड़ों या हजारों एमिनो अम्लों के संयोजन से एक विशिष्ट प्रोटीन तैयार करते हैं। एमिनो अम्लों का यह क्रम ही अलग-अलग प्रोटीनों को उनके विशिष्ट गुण प्रदान करता है। परंतु हम जानते हैं कि एमिनो अम्लों के संयोजन के इस क्रम की संहिता (कूट) डीएनए के घटकों में सूत्रबद्ध है। ये घटक हैं जीन। आमतौर पर एक जीन का कूट एक विशिष्ट प्रोटीन के, जीव की एक विशेषता के, सृजन में योग देता है। अतः आनुवंशिक विशेषताओं के मूल में हैं जीन, जो डीएनए से निर्मित गुणसूत्रों के कार्यक्षम घटक होते हैं।

डीएनए के एक जीन में परिवर्तन करने का अर्थ है जीव की एक विशेषता में परिवर्तन। अब वैज्ञानिक जान गए हैं कि जीनों में फेर-बदल प्राकृतिक रूप से किस तरह होता है और कृत्रिम



डीएनए की संरचना

रूप से किस तरह किया जा सकता है। सन् 1953 के पहले ही वैज्ञानिकों ने आनुवंशिकता के नियम, संकरण के तरीके और रसायनों तथा विकिरण ये होने वाले उत्परिवर्तनों की कुछ विधियां जान ली थीं। परंतु 1953 में डीएनए की संरचना स्पष्ट होने के बाद ही आनुवंशिक कूट (genetic code) और प्रोटीनों के निर्माण की यांत्रिकी स्पष्ट हुई है।

'कैंची' और 'गोंद' का खेल

आज वैज्ञानिक, न केवल आनुवंशिक कूट और इसकी यात्रिकी को काफी स्पष्टता से समझते हैं, बल्कि कुछ सरल जीनों का संश्लेषण करने में भी समर्थ हैं। इतना ही नहीं, एक कार्यक्षम गुणसूत्र का सृजन करने में भी सफलता मिल गई है। परंतु इससे भी बड़ी बात यह है कि वैज्ञानिकों ने एक ऐसी रासायनिक 'कैंची' की खोज की है जिससे डीएनए की कुंडलिनी को इच्छानुसार काटा जा सकता है, और साथ ही, एक ऐसे रासायनिक 'गोंद' की खोज की जिससे इन काटे हुए टुकड़ों को इच्छानुसार जोड़ा जा सकता है। इस उपलब्धि के साथ ही जैव तकनीकी या आनुवंशिक इंजीनियरी का श्रीगणेश हुआ।

ऊपर हमने जिस 'कैंची' और 'गोंद' की चर्चा की है, वे दरअसल दो विशिष्ट प्रकार के एंजाइम हैं। इनके जरिए डीएनए की कुंडलिनी में जीनों को स्थानापन्न किया जा सकता है, एक जीव के डीएनए के किसी खास जीन को दूसरे जीव के डीएनए में पुनः संयोजित या रोपित किया जा सकता है। संक्षेप में, डीएनए में जीनों को बदला जा सकता है, प्रत्यारोपित किया जा सकता है। इसलिए जिस डीएनए में जैव तकनीकी के जरिए विभिन्न स्रोतों से जीन डाले जाते हैं उसे पुनर्संयोजित डीएनए (recombinant DNA) कहते हैं। इसलिए आनुवंशिक इंजीनियरी को **पुनर्संयोजित डीएनए तकनीक** (recombinant DNA technology) भी कहते हैं।

जैव तकनीकी की कई विधियां खोजी गई हैं। एक विधि में जीन के वाहक के रूप में जीवाणु (बैक्टीरिया) के प्लाज्मिड का उपयोग होता है। ये प्लाज्मिड डीएनए के छोटे वलय होते हैं और जीवाणुओं की कोशिकाओं में बेमतलब तरंगते रहते हैं। वैज्ञानिकों ने इन प्लाज्मिडों को जैव तकनीकी के लिए बड़ा उपयोगी पाया है। वे प्लाज्मिड को पृथक करते हैं, इसके वलय में से इच्छित टुकड़ा काटते हैं, और इस रिक्त स्थान पर बाहर से लिया गया नया जीन रोपित कर देते हैं। फिर इस प्लाज्मिड को किसी जीवाणु में, अधिकतर एशरिकिआ कोली *(Escherichia coli)* में या यीस्ट के जीवाणु में स्थापित कर देते हैं। जैसे-जैसे ये जीवाणु बहुगुणित होते हैं, वैसे-वैसे उनके प्लाज्मिड और उनमें रोपित 'विदेशी' जीन भी बहुगुणित होते जाते हैं। इस प्रकार, जीवाणु एक विशिष्ट प्रकार के निर्माण की 'फैक्टरी' बन जाते हैं, क्योंकि उस रोपित नए जीन में एक विशिष्ट प्रोटीन के निर्माण का कूट सूत्रबद्ध होता है।

उदाहरण के लिए, इंसुलिन हॉर्मोन मधुमेह की एकमात्र रामबाण औषध है। यह इंसुलिन मारे गए सूअरों और मवेशियों की अग्न्याशय-ग्रंथियों से तैयार किया जाता रहा है। लेकिन अब जैव तकनीकी के जरिए मानव-इंसुलिन तैयार करने में सफलता मिल गई है। मानव के इंसुलिन-जीन को जीवाणु-कोशिका में रोपित करके यह कृत्रिम इंसुलिन तैयार किया गया है। और, यह मारे हुए जानवरों से तैयार किए जाने वाले इंसुलिन से कहीं बेहतर है।

हमारी पीयूष-ग्रंथियों में एक ऐसा हॉर्मोन पैदा होता है जो मानव शरीर-वृद्धि में योग देता है। इस हॉर्मोन की न्यूनता के कारण अनेक लोग बौनेपन के शिकार हो जाते हैं। अब जैव तकनीकी के जरिए मानव-वृद्धि हॉर्मोन तैयार करने में भी सफलता मिल रही है।

जैव तकनीकी से इंटरफेरोन तैयार करने में भी सफलता मिल रही है। कल्पना कीजिए कि किसी व्याधि का वाइरस मानव-कोशिका में पहुंचता है। तब कभी-कभी ऐसा भी होता है कि उस कोशिका में, उसी वाइरस की उपस्थिति में, उसके संक्रमण को रोकने के लिए एक विशिष्ट प्रोटीन पैदा होता है। इसी प्रतिरोधक प्रोटीन को इंटरफेरोन का नाम दिया गया है। स्पष्ट है कि इंटरफेरोन एक चमत्कारी दवा साबित होगी और कैंसर सहित अनेकानेक वाइरस-जन्य व्याधियों के इलाज में काम आएगी।

इसी तरह, जैव तकनीकी की अनगिनत संभावनाएं हैं। जीन इंजीनियरी के कारण एक नया विज्ञान ही अस्तित्व में आ गया है– जीन चिकित्सा (genetherapy)। मनुष्य में मौजूद आनुवंशिक रोगों के जीनों के स्थान पर नए अथवा बेहतर जीन डालकर यह चिकित्सा की जाती है। एक उदाहरण लीजिए : जीन, विविध प्रकार के एंजाइमों का सृजन करते हैं। एडिनोसिन डीअमाइनेज (Adenosine deaminase) नामक एक एंजाइम है। यह एंजाइम न हो तो रोग प्रतिरोधक शक्ति क्षीण हो जाती है और मनुष्य मर जाता है। मगर यह एंजाइम पैदा करने वाले जीन को मनुष्य की अस्थि-मज्जा में रोपित करके रोगी को बचाया जा सकता है।

जैव तकनीकी की एक और चमत्कारिक उपलब्धि है– क्लोन निर्मिति (cloning)। प्राणियों में सामान्यतः लैंगिक पद्धति से प्रजोत्पादन किया

शब्दावली

कोशिका (cell): सभी सजीवों की बहुत छोटी बुनियादी सक्रिय इकाई। जीवाणुओं में कोशिका का स्वतंत्र अस्तित्व संभव है।

केंद्रक (nucleus): कोशिका के भीतर का कक्ष, जिसमें आनुवंशिक द्रव्य डीएनए (DNA) मौजूद रहता है। केंद्रक, कोशिका के नियंत्रक के रूप में काम करता है।

गुणसूत्र (chromosome): कोशिकाओं में पाए जाने वाले तंतु-नुमा पिंड, जो आनुवंशिक गुणों को निर्धारित करते हैं, संचारित करते हैं। प्रत्येक प्रजाति में गुणसूत्रों की संख्या सुनिश्चित रहती है। मानव की प्रत्येक कोशिका में गुणसूत्रों के 23 जोड़े होते हैं।

डीएनए (DNA = deoxyri-bonucleic acid): जीवित कोशिकाओं के गुणसूत्रों में पाए जाने वाले लंबे तंतु-नुमा अणु, जिनमें आनुवंशिक कूट (genetic code) निबद्ध होता है। डीएनए के अणु की संरचना रस्सों की घुमावदार सीढ़ी की तरह होती है। इसकी दो लड़ियां शर्करा और फास्फेट की शृंखलाओं से बनी होती हैं, और इनके बीच में हाइड्रोजन आबंध वाले चार नाइट्रोजनीय क्षारकों (adenine, thymine, guanine और cytosine) से निर्मित डंडे होते हैं। इन क्षारकों का अनुक्रम आनुवंशिकता के अलग-अलग गुणों को निर्धारित करता है।

कुंडलिनी (helix): कुंडली के आकार की रचना। डीएनए की रचना उभय कुंडलिनी (double helix) के आकार की होती है। विश्व में अनेक जैव व अजैव स्वरूप कुंडलिनी के आकार के हैं। वस्तुतः डीएनए की उभय कुंडलिनी, यांत्रिकी की दृष्टि से, एक काफी सुदृढ़ संरचना होती है।

न्यूक्लिओटाइड (nucleotide): न्यूक्लीक अम्ल की बुनियादी संरचनात्मक इकाई।

आरएनए (RNA=ribonucleic acid): एक अकेली बहु-न्यूक्लिओटाइड शृंखला वाला लंबा तंतु-नुमा अणु, जिसमें फास्फेट और राइबोस (शर्करा) की इकाइयां एकांतर में स्थापित रहती हैं। डीएनए की तरह आरएनए में भी राइबोस से जुड़े चार क्षारक (बेस) होते हैं; अंतर केवल इतना है कि इसमें थायमीन के स्थान पर यूरेसिल (uracil) होता है।

संदेशवाहक आरएनए (Messenger RNA, mRNA): गुणसूत्र में निहित कूटबद्ध सूचनाओं को कोशिका-द्रव्य के उन स्थलों तक पहुंचा देते हैं जहां एमिनो अम्लों से प्रोटीनों का सृजन होता है। स्थानांतरक आरएनए (transfer RNA, tRNA) एमिनो अम्लों के लिए संवाहक का काम करते हैं। कुछ विषाणुओं (वाइरसों) में आरएनए भी आनुवंशिकता का द्रव्य होता है।

विषाणु, वाइरस (virus): न्यूक्लीक अम्ल के बीजकोश और प्रोटीन के आवरण से बने अत्यंत लघु कारक, जो केवल जीवित कोशिकाओं में ही अपनी प्रतिकृतियां बना सकते हैं। ये सजीव कोशिकाओं में प्रवेश करके उन्हें नष्ट करते हैं, रोग पैदा करते हैं और बड़ी संख्या में अपने जैसे विषाणुओं का सृजन करते हैं।

जीवाणु, बैक्टीरिया (bacteria): एककोशिकीय या बहुकोशिकीय सूक्ष्म जीवों का एक बड़ा समुदाय। ये विभिन्न प्रकार के वातावरण में पाए जाते हैं, बिना पर्ण-हरित के होते हैं और सरलता से विभाजित होकर तेजी से बहुगुणित होते हैं। कुछ बैक्टीरिया न्युमोनिया और तपेदिक जैसे रोगों को जन्म देते हैं। कुछ बैक्टीरिया रसायनों, एंजाइमों तथा एंटीबायोटिक के निर्माण के लिए उपयोगी हैं। अब बैक्टीरिया में इंसुलिन और हॉर्मोन निर्माण के लिए जीन रोपित करके इन्हें व्यापारिक स्तर पर बनाया जा रहा है।

उत्परिवर्तन (mutation): किसी भी कोशिका के आनुवंशिक द्रव्य (एक जीन या जीन-समूह) में एकाएक और निरुद्देश्य होने वाला परिवर्तन, जो वंशानुक्रम में चल सकता है। उत्परिवर्तन धीमी रफ्तार से प्राकृतिक रूप से घटित होते हैं, मगर विकिरण और कुछ रसायनों से इनकी रफ्तार बढ़ जाती है। अधिकांश उत्परिर्वन हानिकारक हैं, परंतु कुछ उत्परिवर्तन किसी प्रजाति के क्रमविकास के लिए लाभकारी भी सिद्ध हो सकते हैं।

प्रोटीन (protein): कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन और नाइट्रोजन से निर्मित (बहुतों में गंधक भी होता है) ये कार्बनिक यौगिक सभी सजीवों में पाए जाते हैं। एमीनो अम्लों की एक अथवा कई शृंखलाओं का एक खास अनुक्रम में जुड़ने पर प्रोटीन अणु बनता है। प्रोटीनों के कई प्रकार हैं: एंजाइम, एंटीबॉडीज और हॉर्मोन प्रोटीन ही हैं।

एमिनो अम्ल (amino acid): प्रकृति में कोई 20 एमिनो अम्लों का अस्तित्व है। एमिनो अम्लों से ही प्रोटीनों का निर्माण होता है। प्रोटीन-अणुओं में सैकड़ों या हजारों एमिनो अम्ल एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं। प्रत्येक प्रोटीन में प्रायः सभी एमिनो अम्ल एक खास अनुक्रम में संयोजित रहते हैं। विभिन्न एमिनो अम्लों का यही विशिष्ट अनुक्रम प्रत्येक प्रोटीन को उसकी विशेषताएं प्रदान करता है। एमिनो अम्लों का यह विशिष्ट अनुक्रम डीएनए के न्यूक्लिओटाइडों के क्रम से निर्धारित होता है। समस्त जैव द्रव्य के लिए एमिनो अम्लों से निर्मित प्रोटीनों का बुनियादी महत्त्व है।

राइबोसोम (ribosome): जीवित कोशिका के भीतर स्थित छोटे गोलाकार पिंड, जहां प्रोटीनों का संश्लेषण होता है। राइबोसोम, प्रोटीन बनाने वाली एक प्रकार की आणविक मशीन है। राइबोसोम पहले संदेशवाहक आरएनए अणु को पकड़ता है। इस अणु में प्रोटीन संश्लेषण की सूचनाएं कूटबद्ध होती हैं। संदेशवाहक आरएनए राइबोसोम के साथ रिबन की तरह चिपककर अपने में निहित कूटबद्ध सूचनाओं के अनुसार राइबोसोम-मशीन में प्रोटीन का संश्लेषण करता है और यह सिलसिला जारी रहता है।

एंजाइम (enzyme): कोशिकाओं द्वारा निर्मित प्रोटीनों का एक बहुत बड़ा समूह, जो जीवन को धारण करने वाली रासायनिक प्रक्रियाओं में उत्प्रेरकों (catalyst) का काम करता है। अपना काम सुचारु रूप से करने के लिए अनेक एंजाइमों को सह-एंजाइमों के सहयोग की जरूरत होती है। डीएनए का एक विशिष्ट जीन-समूह कोशिकाद्रव्य (cytoplasm) में एक विशिष्ट एंजाइम के सृजन में योग देता है। उदाहरण के लिए, जिस व्यक्ति को वंशानुगत रूप में लाल केश मिले होते हैं, उसके गुणसूत्रों के डीएनए के एक घटक के विशिष्ट संयोजन में लाल रंग का कूट सूत्रबद्ध रहता है। यह कूट केशों का निर्माण करने वाली कोशिकाओं में एक ऐसे विशिष्ट एंजाइम का सृजन करता है जो लाल रंग के संश्लेषण में उत्प्रेरक का काम करता है। स्पष्ट है कि एंजाइम आनुवंशिकता में अत्यंत महत्त्व की भूमिका अदा करते हैं।

प्लाज्मिड (plasmid): जीनों का गोलाकार समूह (डीएनए अणु), जो कोशिका के गुणसूत्र से पृथक रहकर उसमें स्वतंत्र विचरण करता है, जीवाणु के गुणसूत्र के द्रव्य से प्लाज्मिड के डीएनए का द्रव्य करीब दस गुना कम होता है। विशिष्ट किस्म के 'कैंची' एंजाइमों (restriction enzymes) से प्लाज्मिडों को काटा जा सकता है, और इनमें अन्य जीवाणुओं के डीएनए घटकों को रोपित किया जा सकता है। अतः ये संवाहक (vector) का भी काम करते हैं। पुनर्संयोजित डीएनए नामक नई जैव तकनीकी में इन प्लाज्मिडों का बड़ा महत्त्व है।

इंटरफेरोन (interferon): कोशिका में वाइरस की उपस्थिति में उसके संक्रमण को रोकने के लिए कोशिकाओं में पैदा होनेवाले प्रोटीन। आणुविक जैविकी के सिस्टोन, ओपेरोन, कोडोन आदि शब्दों के अनुकरण पर 1956 में इंटरफेयर (रोक) शब्द से, मजाक-मजाक में यह इंटरफेरोन शब्द गढ़ा गया था। जैव तकनीकी से इंटरफेरोन तैयार करने में सफलता मिल गई है। हेपाटिटिस और कैंसर जैसे रोगों के लिए इसका उपयोग हो रहा है।

जीन (gene): यूनानी भाषा के 'जीनस्' (जाति, वंश) से बना शब्द, जिसे अब हमने भारतीय भाषाओं के लिए भी अपना लिया है। वैसे, जीन के लिए वंशाणु शब्द भी ठीक है। जीन, आनुवंशिकता के बुनियादी और कार्यक्षम घटक होते हैं। प्रत्येक डीएनए अणु में बहुत-से जीन होते हैं। वस्तुतः जीन डीएनए (या आरएनए) के न्यूक्लिओटाइडों का एक ऐसा अनुक्रम है जिसमें सन्निहित कूटबद्ध सूचनाओं से अंततः प्रोटीनों के संश्लेषण का कार्य सम्पन्न होता है।

आनुवंशिकी (genetics): आनुवंशिकता, विविधता, परिवर्धन और विकासक्रम का अध्ययन। लंदन में 1906 में आयोजित तीसरी अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस में अध्यक्ष विलियम वाटेसन ने इस नए अध्ययन के लिए पहली बार जीनेटिक्स शब्द का प्रस्ताव रखा था और इसे तत्काल स्वीकार कर लिया गया था।

जीनोम (genome): किसी भी जीव के डीएनए (गुणसूत्र) में मौजूद समस्त जीनों का अनुक्रम। मानव जीनोम में अनुमानतः 80,000 से 1,00,000 तक जीन होते हैं।

जीन चिकित्सा (gene therapy): जीन इंजीनियरी के तरीकों से दोषपूर्ण जीनों को बदलना या पुनर्स्थापित करना। जीन चिकित्सा की विधियों से कई वंशानुगत व्याधियों का उन्मूलन संभव होगा।



'डॉली' के साथ डॉ. विल्मट

जाता है। परंतु क्लोन (clone) एक ही प्राणी से तैयार किए जा सकते हैं। इसके लिए मादा की कोशिका लेकर उसमें से केंद्रक निकाल लिया जाता है और उसके स्थान पर शरीर के अन्य स्थान की कायिक कोशिका लेकर उसके केंद्रक को वहां स्थापित किया जाता है। इस तरह के अंड को मादा के गर्भाशय में रखने पर उससे नया जीव जन्म लेता है। सन् 1997 में इंग्लैंड के डॉ. विल्मट ने क्लोनिंग की इसी पद्धति का उपयोग करके 'डॉली' नामक भेड़ को जन्म दिया था। इस तकनीकी को मनुष्य पर लागू करके मानव के भी क्लोन तैयार किए जा सकेंगे, इसकी संभावना है ही। फिलहाल इतना तो निश्चित है ही कि जीन इंजीनियरी के मानव-समाज के लिए कई सारे लाभ हैं। जैसे, अच्छी नस्ल के पशुओं को बड़ी संख्या में पैदा किया जा सकता है।

मानव-जीनोम अर्थात् जीन-कोश

मानव की प्रत्येक कोशिका के केंद्रक में गुणसूत्रों के 23 जोड़े होते हैं। ये गुणसूत्र डीएनए अणु से बने होते हैं। इस डीएनए अणु की कुंडली या श्रृंखला का जो एक भाग एक प्रोटीन का सृजन कर सकता है उसे 'जीन' का नाम दिया गया है। जीन के जरिए ही एक पीढ़ी के गुण दूसरी पीढ़ी में पहुंचते हैं। जीन क्षारकों से आबद्ध रहते हैं। जीनों को ठीक किन क्षारकों से और किस क्रम से जोड़ा गया है– इस बात से ही जीनों का कार्य निर्धारित होता है। इसलिए यह जानना जरूरी हो जाता है कि गुणसूत्रों में अथवा डीएनए की कुंडली में कौन-सा जीन कहां है और उसकी रचना कैसी है। अन्य शब्दों में, जीनों का 'नक्शा' बनाना होगा, एक 'कोश' तैयार करना होगा। मानव-जीनों के इसी नक्शे या कोश को मानव-जीनोम (Human Genome) का नाम दिया गया है।

मगर मानव-जीनोम का नक्शा या कोश तैयार करना आसान काम नहीं है। मानव-जीनोम में लगभग 50,000 जीन हैं और ये करीब 3.1 अरब रासायनिक क्षारकों से आबद्ध हैं। इसलिए पूरे मानव-जीनोम को जानने का अर्थ है– डीएनए अणु में विद्यमान पचास हजार जीनों को पृथक पहचानना और उनके 3.1 अरब क्षारकों के अनुक्रमों (sequences) को निर्धारित करना। यह काम किसी एक प्रयोगशाला के एक वैज्ञानिक-दल के बस का नहीं था।

व्यापक स्तर के प्रयासों से मानव-जीनोम का नक्शा तैयार करने का प्रस्ताव 1980 के दशक में सामने आया। अमेरिका के ऊर्जा विभाग के अंतर्गत बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाएं थीं, जिन्हें एटम बम के निर्माण के लिए दूसरे महायुद्ध के दौरान खड़ा किया गया था। शीतयुद्ध के समय में भी उन्हें चालू रखने के लिए नई योजनाओं की और उसके साथ मिलने वाले सरकारी अनुदान की आवश्यकता थी। जब ऊर्जा विभाग ने मानव-जीनोम का नक्शा तैयार करने की योजना प्रस्तुत कर दी, तो जीववेत्ताओं में खलबली मच गई। वजह यह थी कि अब तक ऐसे काम अमेरिका की सरकारी संस्था 'नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ' यानी राष्ट्रीय आरोग्य संस्थान संभालता आ रहा था। खैर, दोनों में सुलह हो गई। नक्शा तैयार करने का काम आरोग्य संस्थान के जिम्मे आया और जीनों का अनुक्रमण (genome sequencing) निर्धारित करने की तकनीक तैयार करने की जिम्मेदारी ऊर्जा विभाग ने संभाल ली।

फ्रांस और इंग्लैंड जैसे कुछ उन्नत देशों में मानव-जीनोम अनुक्रमण का काम पहले ही आरंभ हो गया था। इसलिए अंत में जो व्यापक योजना अस्तित्व में आई उसमें इन देशों के अलावा जर्मनी, जापान और चीन भी शामिल हो गए। कुल छह देशों और 16 प्रयोगशालाओं के संगठन वाली इस भव्य योजना की 1990 में शुरुआत हुई। इस योजना पर 3 अरब डालर खर्च होने थे और यह 15 वर्षों में यानी 2005 ई. तक पूरी होनी थी। इस तथाकथित 'सार्वभौमिक' योजना में अमेरिका और इंग्लैंड की प्रमुख भागीदारी रही है।

मानव-जीनोम अनुक्रमण की इस योजना में भारत भागीदार नहीं बन सका, यह सचमुच ही खेद की बात है। यह बात नहीं है कि इसके लिए

हमारे देश में समर्थ वैज्ञानिक नहीं थे। हैदराबाद की कोशिकीय और अणु-जैविकीय प्रयोगशाला (CCMB) ने इस क्षेत्र में काम करने के लिए सरकार के सामने प्रस्ताव भी रखा था, मगर वह स्वीकार नहीं हुआ। भारत जैव-विविधता के मामले में दुनिया का एक अग्रणी देश है, इसलिए आगे हमारे वैज्ञानिक इस क्षेत्र में व्यापक खोजबीन कर सकते हैं।

लेकिन एक अमेरिकी जीववेत्ता ने दो साल पहले इस सारे मामले को एकाएक एक नया मोड़ दे दिया। वे हैं– क्रेग वेंटर। वेंटर दो साल पहले तक, यानी 1998 तक, राष्ट्रीय आरोग्य संस्थान के अंतर्गत चल रही मानव-जीनोम परियोजना से ही जुड़े हुए थे। मगर वहां उनके मन के मुताबिक काम नहीं हो रहा था, उन्हें अनुसंधान के लिए आवश्यक धन नहीं मिल रहा था, उनकी उपेक्षा की जा रही थी, इसलिए वे आरोग्य संस्थान से अलग हो गए और मई 1998 में उन्होंने सेलेरा जेनोमिक्स (Celera का लैटिन में अर्थ है 'गति') नाम से अपनी निजी कंपनी स्थापित की। फिर उनकी सेलेरा कंपनी के साथ वैज्ञानिक उपकरण बनाने वाली पेर्किन-एल्मर नामक कंपनी भी जुड़ गई। यहां जानने लायक महत्त्व की बात यह है कि पेर्किन-एल्मर ने जीन-अनुक्रमण के लिए रोबोट-नियंत्रित एक ऐसी मशीन ('3700') बनाई थी जिससे, एक टेक्नीशियन द्वारा आठ घंटों में किया जाने वाला काम, केवल 15 मिनटों में पूरा हो जाता था!

बस, इसी शक्तिशाली तकनीकी साधन के बल पर दो साल पहले वेंटर ने घोषणा कर दी थी कि वे मानव-जीनोम अनुक्रमण को 2001 ई. तक पूरा कर देंगे। इस घोषणा से वैज्ञानिक जगत में तहलका मचना स्वाभाविक था। बहुतों ने वेंटर को सिरफिरा कहा, मगर वह डटे रहे। उधर सरकारी योजना के अंतर्गत चल रहे अनुसंधान में भी गति आई। मानव-जीनोम की इस सर्वव्यापी योजना को लेकर 'सार्वजनिक' और 'निजी' प्रयासों के बीच जबरदस्त होड़ शुरू हो गई। फिर वेंटर ने घोषणा की कि वे 2000 ई. में ही मानव-जीनोम अनुक्रमण का कार्य पूरा कर लेंगे! उधर सार्वजनिक योजना वालों ने कहा कि वे भी अपना कार्य इसी साल पूरा कर देंगे।

यह प्रमुखतः एक ही देश के भीतर 'सार्वजनिक' और 'निजी' के बीच का 'युद्ध' था– मानव-जीनोम अनुक्रमण पर एकाधिकार प्राप्त करने के लिए। इसलिए सुलह अवश्यंभावी थी। अमेरिकी राष्ट्रपति ने दोनों दलों में 'सुलह' करा दी और 26 जून 2000 को घोषणा कर दी कि मानव-जीनोम अनुक्रमण का प्रारंभिक प्रारूप तैयार हो गया है।

क्या अर्थ है इस घोषणा का? समस्त मानव-जाति से संबंधित यह बुनियादी जानकारी सभी को, सारे देशों के वैज्ञानिकों को, सहजता से और मुफ्त में उपलब्ध हो जाएगी? अभी तो सिर्फ प्रारंभिक प्रारूप तैयार होने की घोषणा मात्र हुई है। कार्य पूरा होने में दो-तीन साल और लगेंगे। मगर चिंतनीय प्रश्न है– क्या निजी कंपनी सेलेरा, जिसने इस अनुसंधान-कार्य में काफी धन लगाया है, अपनी सूचनाओं से धन कमाना नहीं चाहेगी? क्या क्रेग वेंटर जीव-विज्ञान के बिल गेट्स नहीं बन सकते?

मानव जीनोम-कोश उपलब्ध हो जाने पर जैव-तकनीकी के नए-नए आयाम तेजी से खुलते जाएंगे। जैव-तकनीकी, परमाणु ऊर्जा की तकनीकी की तरह, समस्त मानव-जाति के लिए एक महान वरदान सिद्ध हो सकती है। परंतु यही जैव-तकनीकी, मानव-जीनोम की जानकारी से महाशक्तिशाली बनकर, परमाणु बमों की तरह, समस्त मानव-जाति के लिए महाविनाशकारी भी बन सकती है।

जीन के सृजन या रोपण का अर्थ है एक विशिष्ट गुण या स्वरूप का रोपण। आज धड़ल्ले से मानव-जीनों को ई. कोली या यीस्ट के जीवाणुओं में रोपित करने के प्रयोग किए जा रहे हैं। मान लिया कि ये दोनों जीवाणु आज रोगजनक नहीं हैं। परंतु इनमें बाह्य जीनों के प्रत्यारोपण से ये कब रोगजनक बन जाएंगे, इसके बारे में पूरे यकीन के साथ कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इसी तरह, किसी जैव-तकनीकी की प्रयोगशाला से, किसी भी समय, किसी भी दुर्घटना से, कोई भी नया रोगजनक जीवाणु बाहर आकर सारी दुनिया में तबाही मचा सकता है। विशेष चिंता की बात तो यह है कि जैव तकनीकी पर गोपनीयता का वातावरण दिनों-दिन घना होता जा रहा है।

परमाणु ऊर्जा का, सही मायने में परमाणु बमों का, विकास करते समय सरकारों और वैज्ञानिकों ने मिलकर सारी दुनिया की जनता को अंधेरे में रखा था। जैव-तकनीकी समूचे जीव-जगत में आमूल परिवर्तन करने के लिए अवतरित हुई है। मानव-जीनोम की जानकारी पर आधारित नई जैव-तकनीकी दुनिया के प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित करने में समर्थ होगी। तब इससे अनभिज्ञ रहकर कैसे काम चल सकता है? यदि आप चाहते हैं कि जैव-तकनीकी सारी मानव-जाति के लिए एक महान वरदान सिद्ध हो, तो इसकी विधियों को, इसकी उपलब्धियों को, ठीक से जानना होगा, समझना होगा, इस पर सभ्य मानव-समाज का सख्त नियंत्रण स्थापित करना होगा।

'आविष्कार' पत्रिका में प्रकाशन हेतु लेख आमंत्रित हैं

'आविष्कार' पत्रिका में प्रकाशन हेतु विज्ञान लेखकों, वैज्ञानिकों, अनुसंधानकर्ताओं, प्रौद्योगिकीविदों, तकनीकी विशेषज्ञों, आविष्कारकों, नवाचारकों, उद्यमियों आदि से लेख आमंत्रित हैं। 'आविष्कार' पत्रिका में विज्ञान और प्रौद्योगिकी विषयक लेखों के अतंर्गत नई प्रौद्योगिकियों, अनुसंधान एवं विकास कार्यों, नए आविष्कारों व नवाचारों, सामयिक विषयों (करंट टॉपिक्स) आदि पर लेख प्रकाशित किए जाते हैं। पत्रिका में लेखों के अतिरिक्त विविध स्तंभ भी प्रकाशित किए जाते हैं। पत्रिका में प्रकाशित लेखों पर एनआरडीसी द्वारा निर्धारित मानदेय देने की व्यवस्था है।

लेखकों के लिए दिशा-निर्देश

❖ लेख का विषय विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में किसी सामयिक विषय (करंट टॉपिक्स), नई प्रौद्योगिकियों, अनुसंधान एवं विकास कार्यों, नए आविष्कारों व नवाचारों, भावी प्रौद्योगिकियों आदि पर आधारित हो।

❖ साधारणतया लेख अधिकतम लगभग 3,000 शब्दों का हो। स्तंभ के लिए भेजा गया लेख अधिकतम लगभग 1,500 शब्दों का हो। लेख को बोधगम्य एवं सुरुचिपूर्ण बनाने हेतु कृपया लेख के साथ उपयुक्त फोटोचित्र/रेखाचित्र (प्रिंट करने योग्य क्वालिटी के) भी संलग्न करें और फोटोचित्र/रेखाचित्र के मूल-स्रोत का संदर्भ अवश्य दें। लेख में यदि आंकड़ों का प्रयोग किया गया है तो साथ में आंकड़ों के मूल-स्रोत का संदर्भ भी दें। लेख के साथ इस आशय का घोषणा-पत्र अवश्य भेजें कि आपका लेख मौलिक, अप्रकाशित व अप्रसारित है।

❖ लेख सरल हिंदी भाषा में लिखा हो। कोष्ठक में वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दों के अंग्रेजी शब्द अवश्य दें। कृपया अपने लेख में प्रयुक्त वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दों को मानकीकरण हेतु वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली द्वारा तैयार शब्दावलियों के अनुरूप रखें।

❖ मापों को संक्षिप्त रूप में न लिख कर पूरे रूप में लिखें जैसे कि.ग्रा. के लिए किलोग्राम, मि.मी. के लिए मिलिमीटर आदि। सभी माप मीट्रिक प्रणाली में हों।

❖ टाइप किया लेख (फोन्ट सहित) ई-मेल से भेजें।

❖ प्रकाशन के लिए उपयुक्त पाए गए लेखों को ही पत्रिका में प्रकाशित किया जाएगा। किसी लेख के प्रकाशन हेतु चयन के संदर्भ में संपादक का निर्णय अंतिम होगा। प्रकाशन हेतु अनुपयुक्त पाए गए लेख को पत्रिका में या अन्यत्र किसी भी रूप में प्रयुक्त न करते हुए लेखक को वापस भेज दिया जाएगा।

❖ प्रकाशन हेतु प्राप्त किसी लेख में यदि साहित्यिक चोरी अथवा किसी स्रोत से शब्दशः अनुवाद का मामला पाया गया तो उस लेख को सीधे अस्वीकृत कर दिया जाएगा और लेखक को इसकी सूचना दे दी जाएगी। ऐसे मामले में लेखक का नाम कालीसूची में डाल दिया जाएगा।

❖ लेख के अंत में अपने हस्ताक्षर सहित अपने पत्र-व्यवहार का पता भी दें। साथ ही लेख के कुल पृष्ठों की संख्या, फोटोचित्रों/रेखाचित्रों और सारणियों की संख्या का भी उल्लेख करें।

❖ लेखक द्वारा भेजे गए लेख एवं फोटोचित्रों/रेखाचित्रों के संदर्भ में कॉपीराइट संबंधी उत्तरदायित्व स्वयं लेखक का होगा।

लेख इस पते पर भेजें : वरिष्ठ संपादक, आविष्कार, नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, 20-22, जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कॉलोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048, ई-मेल: rkanthwal@nrdc.in

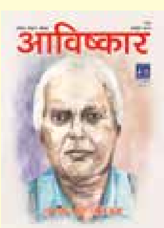
एनआरडीसी के अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक को आईसीसी का 'सीईओ ऑफ दि इअर पीएसई इक्सीलेंस अवार्ड 2017



डॉ. अजय दुआ, पूर्व सचिव, वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय, भारत सरकार से पुरस्कार प्राप्त करते डॉ. एच. पुरुषोत्तम, अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक, एनआरडीसी

इंडियन चैम्बर ऑफ कॉमर्स (आईसीसी), नई दिल्ली द्वारा डॉ. एच. पुरुषोत्तम, अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक, नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन (एनआरडीसी) को 29 अगस्त, 2018 को नई दिल्ली में आयोजित 8वें इंडिया पब्लिक सेक्टर एजेंडा @2020, पब्लिक सेक्टर रिफोर्म्स इन इंडिया एंड पीएसई इक्सेलेंस अवार्ड कार्यक्रम में वर्ष के 'मुख्य कार्यकारी अधिकारी' पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

यह पुरस्कार एनआरडीसी में बदलाव लाने और 'मेक इन इंडिया' तथा 'स्टार्ट-अप-इंडिया' जैसे प्रधानमंत्री के प्रमुख कार्यक्रमों के प्रति महत्त्वपूर्ण योगदान के लिए प्रदान किया गया है। यह पुरस्कार डॉ. अजय दुआ, पूर्व सचिव, वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा एक भव्य समारोह में प्रदान किया गया।



'आविष्कार' का यह अंक आपको कैसा लगा? किस लेख विशेष ने आपको प्रभावित किया? इस अंक में आपको क्या पसंद नहीं आया? 'आविष्कार' से आपको क्या अपेक्षाएं हैं? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनके बारे में यदि आपके सुझाव मिलते हैं तो 'आविष्कार' को आपकी आशा-अपेक्षाओं के अनुरूप ढालते रहने में हमें मदद मिलेगी। आपकी रचनात्मक टिप्पणियों और विचारों का स्वागत है।

RNI-No. 21740/71
Postal Regd. No. DL(S)-01/3188/2018-20
Date of Publication : 1 October 2018
Total pages : 52
Date of Posting: 3-4 October 2018

राधाकान्त अंथवाल द्वारा नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन [वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान विभाग, विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार का उद्यम], 20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कॉलोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048 की ओर से प्रकाशित व मुद्रित एवं रैक्मो प्रेस प्रा. लि., सी-59, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेस-I, नई दिल्ली-110020 से मुद्रित।
संपादक : राधाकान्त अंथवाल